प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास ७

शुभाशीर्वाद

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

दिव्य कृपा

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.
शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.
मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.
हिन्दी अनुवाद : सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

-: जीवराशि - १८ पाप स्थानक, करेमि भंते :-

जीव राशि

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्....!
जीवराशि खमाऊंजी ? इच्छं
सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वाउकाय, दश लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चउद लाख साधारण वनस्पतिकाय, बे लाख बेइंद्रिय, बे लाख तेइंद्रिय बे लाख चउरिंद्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चउद लाख मनुष्य ना भेद, अेवंकारे चउद राज चोरासी लक्ष जीवयोनि मांहे म्हारे जीवे जिको कोई जीव दुहव्यो होय, दुहवाव्यो होय, दुहवता

प्रत्ये अनुमोद्यो होय, ते सवि हूँ मने वचने कायाये करी मिच्छामि दुक्कडं.

अर्थ :- इस जीवराशी में कही गई सब मिल कर जीवों की योनियां चौरासी लाख हैं । योनि-याने जीव के उत्पन्न होने के स्थान । जीवों के उत्पन्न होने के स्थान तो इससे भी ज्यादा है । पर वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श से जिनके समान स्थानक होते हैं, उसे एक स्थानक गिना जाता है । उस अनुसार उपरोक्त चौर्यासी (८४) लाख जीव-योनियों में मेरे जीव ने जो कोई भी जीव को पीडा (दुःख) पहुंचाई हो, दूसरों के पास से पीडा दी हो, अन्य कोई पीडा देता हो, उसे अनुमति दी हो या उसकी अनुमोदना की हो, उन सभी को मैं मन,वचन,काया से मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ ।

इस सूत्र से चौयासी लाख जीव योनि में से किसी भी जीव को त्रिकरण योगे पीडा दी हो उसका मिथ्या दुष्कृत दिया जाता है ।

.....

इच्छाकारेण सदिस्सह भगवन । अठारह पाप स्थानक आलोवुंजी ?

अठारह पापस्थानक

इच्छं ! पहेले प्राणातिपात, बीजे मृषावाद, त्रीजे अदत्तादान, चौथे मैथुन, पाँचमें परिग्रह, छठ्ठे क्रोध, सातमे मान, आठमे माया, नवमे लोभ, दशमें राग, अग्यारमे द्वेष, बारमे कलह, तेरमे अभ्याख्यान, चौदमे चाडी (पैशुन्य) पन्नरमे रतिअरति, सोलमे परपरिवाद, सत्तरमे मायामृषावाद, अढारमे मिथ्यात्व शल्य अे अठारह पापस्थानक मांहे जे कोई पाप स्थानक मारा जीवे सेव्यु होय, सेवराव्युं होय, सेवतां प्रत्ये अनुमोद्युं होय ते सवि मने, वचने, कायाअे करी मिच्छामि दुक्कडं ।

-: शब्दार्थ :-

पापस्थानक - पापों के स्थान

प्राणातिपात - पर (अन्य) जीव की हिंसा करना ।

मृषावाद - असत्य बोलना

अदत्तादान - चोरी करना

मैथुन - विषयभोग करना या उसकी इच्छा करना ।

परिग्रह - धन,धान्यादि चीज वस्तु का संग्रह करना ।

क्रोध - गुस्सा करना ।

मान - अभिमान, अहंकार करना ।

माया - कपट करना, अन्य को ठगना ।

लोभ - तृष्णा, असंतोष रखना ।

राग - (प्रीति) मोह रखना

द्वेष - (अप्रीति, अरुचि) तिरस्कार करना ।

अभ्याख्यान - झूठा कलंक चढाना

चाडी (पैशुन्य) - चुगली करना ।

रति - सुख आने पर हर्ष करना ।

अरति - दुःख आने पर शोक करना ।

परपरिवाद - पराई निंदा करना

माया मृषावाद - कपट के साथ झुठ बोलकर ठगना ।

मिथ्यात्वशल्य - कुदेव, कुगुरु, कुधर्म मानने की इच्छा करना ।

अर्थ :- १) पर के प्राणों का नाश २) असत्य वचन बोलना ३) पराई वस्तु मालिक की अनुमति के बगैर लेना ४) विषयभोग करना या उसकी इच्छा करना ५) धन धान्यादि वस्तुओ का संग्रह करना ६) गुस्सा करना ७) अहंकार करना ८) कपट करके अन्य को ठगना ९) तृष्णा रखना १०) पौद्गलिक वस्तु उपर प्रीति रखना ११) अनचाही वस्तु का तिरस्कार करना १२) दूसरों के साथ झगडा (कलह) करना १३) झुठा कलंक चढाना १४) अन्य के दोष की चुगली करना १५) सुख, दुःख आये हर्ष,शोक करना १६) गुणी,निर्गुणी की निंदा करना १७) कपट से असत्य बोल कर छल करके लोगो को ठगना १८) कुदेव, कुगुरु, कुधर्म मानना और उसकी चाहना करना । इन अठारह पाप स्थानों मे से कोई भी पाप स्थान का मेरे जीव ने सेवन किया हो, दूसरे से सेवन कराये हों, कोई सेवन करता हो उसे संमति दी हो वह सब मैं मन,वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं देता हूँ । १८ पापस्थानक के १६२ भांगो (भेद) से दोष लगता है । १८ को तीन करण से गुणाकार करके उसे तीन योग से गुणाकार करने पर १६२ भांगे होते हैं, वो इस सूत्र से मिथ्या दुष्कृत किया जाता है ।

करेमि भंते सूत्र

करेमि भंते ? सामाइयं सावज्ज जोगं पच्चख्खामि, जाव नियमं, पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाओ काओणं न करेमि न कारवेमि, तस्स भंते !पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

-: शब्दार्थ :-

करेमि : करता हूँ
भंते : हे भगवंत
सामाइयं : सायायिक को
सावज्जं : पापवाला
जोगं : योग को, व्यापार को
पच्चख्खामि : पच्चख्खाण करता हूँ, त्याग करता हुं
जाव - जहाँ तक
नियमं - नियम को
पज्जुवासामि - पर्युपासना करुं
दुविहं - दो प्रकार से
तिविहेणं - तीन प्रकार द्वारा
मणेणं : मन द्वारा
वायाये : वचन द्वारा
काओणं : काया द्वारा
न करेमि : नहीं करुंगा
न कारवेमि : नहीं कराउंगा
तस्स : उस पाप से
भंते : हे भगवंत
पडिक्कमामि : मैं वापस फिरता हूं
निंदामि : मैं मन से निंदा करता हूं, पश्चाताप करता हुं
गरिहामि : गुरुसाक्षी से प्रगट रुप से विशेष निंदा करता हुं
अप्पाणं - मेरी आत्मा को
वोसिरामि : वोसिराता हुं, त्याग करता हुं.

अर्थ :- हे भगवंत ! मैं समता का लाभरुप सामयिक करता हूं, पापवाले व्यापर का त्याग करता हुं, मैं जहाँ तक (सामायिक का) नियम का सेवन करता हूं वहाँ तक दो प्रकार के करण (करना, करवाना) और तीन प्रकार के योग द्वारा, मन, वचन, कायाद्वारा करुंगा नहीं, कराऊंगा नहीं (इस तरह छः प्रकार से) हे भगवंत ! उस सबंधी (पूर्व में किये हुए) पाप से मैं वापिस फिरता हूं, मैं मन से उसका पश्चाताप करता हुं, गुरुसाक्षीओ प्रगट रुप से विशेषतः निंदा करता हुं । मेरी आत्मा को पाप से वोसिराता हुं ।

श्रावक किसे कहें ?

(श्रावक के २१ गुण)

१. लज्जालु (लज्जाशील)

लज्जालुओ अकज्जे,
वज्जई दूरेण जेण तणुयं पि ।
आचरइ सयाचारं,
न मुयइ अंगीकयं कहवि ।।

लज्जावान धर्मका अधिकारी है ।

लज्जा श्रावक का नौवा गुण है ।

लज्जावान सदा निंदित कार्यसे दूर रहता है ।

लज्जावान सदा सदाचार का आचरण करता है ।

लज्जावान अंगीकार किये हुए व्रत को कभी भी त्यागता नहीं है ।

हाँ ! इसीलिये लज्जावान धर्म करने के लिये लायक है, योग्य है ।

इस हिंदुस्तान में जहाँ तक लज्जा का गुण घर-घर में और घट घट में व्याप्त था तब तक हिंद के पुण्य का और पवित्रता का सूर्य प्रखर तेज से चमकता था ।

ऐसे वस्त्रों में ज्येष्ठ लोगों के सन्मुख कैसे जाये ?

बडों के सामने बीडी कैसी पी जाय ?

बडों के साथ ऐसी बात कैसे की जाय ?

जहाँ लज्जा थी वहाँ मर्यादा का पालन था । आज भी जहाँ लज्जा है वहाँ मर्यादा का पालन है ।

परंतु पिछले कुछ समय से समाज में एक परिवर्तन आया । स्त्री शिक्षा के नाम से घरमें से, चार दिवालों में से बहार निकली । शिक्षा में आगे बढी हुई नारी नौकरी, धंधे में जुड गई । राजकारण में रस लेने लगी, अब तो वह पुरुषों को टक्कर देने लगी ।

धीमे धीमे लज्जा कम होने लगी । एक एक मर्यादा टूटने लगी । और आज समाज की जो स्थिति हुई है वह हम देख रहे है । अनुभव कर रहे है ।

आज बाप बेटा साथ में शराब पीते है, परिवार के सब सदस्य टी.व्ही. पर आधुनिक फिल्म देख रहे है ।

बेटा बाप के सामने, बहु-बेटी, सास एवं माँ के सामने मन चाहे वैसा बोल रही है । कहीं भी कैसे भी वस्त्र परिधान कर रही है । फलस्वरुप धर्म तो दूर हमारे सामाजिक और संस्कारी जीवन के महल टूट रहे है, जमीनदोस्त हो रहे है । न जाने कितने परिवार टूटे, कितनों के जीवन भग्न हुए ।

लज्जावान, कुलवान, खानदान व्यक्ति के मन में विचार आता है कि मेरे से ऐसा कार्य कैसे हो सकता है ? मैं ऐसा करुंगा तो दुनियावाले क्या कहेंगे ? समाज का दुनिया का डर भी जीवों को बहुत सारे अकार्यो से अटकाता है , सन्मार्ग पर ले जाता है ।

लज्जा में मर्यादा है, मर्यादा में हमारी सलामती है ।

लज्जा नहीं है वहाँ मर्यादा नहीं, मर्यादा नहीं वहाँ सलामती नहीं । धर्म के अधिकारी बनने के लिये मर्यादा चाहिये । मर्यादा के लिये लज्जा चाहिये । अपने जीवन का आत्मनिरीक्षण हमे अपना परिचय करायेगा की हम कहाँ है ?

रामचंद्रजी के परम भक्त हनुमान
सीताजीके रोज पैर छुते हनुमान
रामचंद्रजी के सुख-दुःख के साथीदार हनुमान

ऐसे हनुमानजी को सीताजी कैसी है ? उनके अलंकार कैसे है ? इसकी खबर नहीं थी । यह थी आर्यभूमि की लज्जा और मर्यादा ।

इसी आर्यक्षेत्र में जन्म लेनेवाले पुण्यवान आत्माअें आज किस मार्गसे जा रहे है ? इसकी उनके पास जानकारी नहीं ।

लज्जा सब सद्गुणों की माता है । माता के बिना पुत्र का संभव नहीं, वैसेहि लज्जा बिना जीवन में सद्गुणों की प्राप्ति कभी भी संभव नहीं ।

बहुत बार प्रश्न पूछा जाता है, ''किसी की शर्म-हया रखकर सदाचार का सेवन करनेवाला एवं दुराचार से दूर रहनेवाला आनेवाले कल में उनकी गैरहाजिरी में जरुर सदाचार को छोडकर दुराचार नहीं अपनायेंगे क्या ?

नहीं, ऐसा नहीं है । छोटा बच्चा पहले भय से अकार्य टालता है, फिर लालच से सत्कार्य की ओर बढता है, अंत में सच्ची समझ आनेपर स्वंयमेव अकार्य का त्यागकर सत्कार्य करने की लिये कटिबद्ध बनता है ।

इसी तरह कुमार अथवा युवान अवस्था प्राप्त व्यक्ति जब बडों के समाज के सज्जनों के, गुरुजनों के शर्म से, लज्जा से अकार्य से अटकता है तब धीरे धीरे उस तरह जीवन जीने की आदत हो जाती है । सदाचार के पथ की आदत हो जाती है, इससे जीवन बरबाद होते रुक जाता है, जीवन नंदनवन बन जाता है ।

वर्षों पुरानी बात है ..

एक थे चमत्कारी बाबा, हाथ में एक कमंडल लेकर गांव-गांव फिरते थे । जहाँ अच्छा लगे वहाँ सज्जन, धार्मिक व्यक्ति के घर रुक जाते थे । इच्छा होती तबतक रुकते, मन हुआ तो दुसरे गांव चलते बनते । घूमते घूमते बाबा एक गृहस्थ के यहाँ पधारे । गृहस्थ को बडा आनंद हुआ । ससन्मान बाबा को घर में रखा । आठ दस दिन रहकर संत ने विदाय मांगी । पति-पत्नी ने हितोपदेश एवं आशीर्वाद माँगा । चमत्कारी बाबा ने दोनों को एकसाथ कहा ''मनुष्य बनो'' इतना कहकर बाबा दूसरे गांव चले गये ।

भोलेभाले पति-पत्नी बाबा की कही बात पर विचार करने लगे । बाबाजी हमे ''मनुष्य बनने'' को कह गये तो क्या हम मनुष्य नहीं है ? हम क्या पशु है ? पक्षी है ? भूत है ? राक्षस है ? दोनों जनो ने खूब विचार किया, परंतु उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया । अंत में दोनों ने नक्की किया अब कभी भी बाबा मिलेंगे या आयेंगे तब उन्हें अर्थ पूछ लेंगे।

बरसों बीत गये । फिर से संत पधारे, थोडे दिन रुके और फिर से विदा होते हुए ''मनुष्य बनो'' कहकर चलते बने ।

बरसों पहले घटी घटना भी दंपति को याद आयी । और वे बाबा जी के पीछे दौडे । बाबाजी के पास पहुँचते ही उन्हों ने सवाल किया ''बाबाजी ! आज दुसरी बार आपने हमे ''मनुष्य बनो'' कहकर विदा ली । क्या हम मनुष्य नहीं है ? आपकी बात हमें समझती नहीं है ।''

आये हुए दंपति को हाथ में रहा हुआ कमंडल देकर बाबाजी ने कहा ''इसमें पानी डालना और फिर तुम्हारा चेहरा उसमें देखना तो तुम्हे सब समझ आयेगा ।

दंपति कमंडल स्वीकार कर घर लौटे । जल्दी से घर पहूँचकर कमंडल में पानी डाल पति ने पत्नी का प्रतिबिंब देखने का प्रयास किया, पत्नी के प्रतिबिंब को देखकर पति जोर जोर से हंसने लगा । कैसी है जीव की हालत ? दुसरा कैसा है यही देखने की मनुष्य को उत्सुकता होती है, स्वयं को देखना भूल जाता है । जोर जोर से हंसते हुए पति को देख अत्यंत व्याकुल पत्नीने कमंडल पति से लेकर उसमें पति का प्रतिबिंब देखने लगी । नजर कमंडल में पडते ही वह खुद भी दांत निकालकर हंसने लगी ।

पतिने पूछा ''क्यों हंस रही हो ?

पत्नीने जबाब दिया ''कमंडल में तुम गधे जैसे दिखाई दे रहे हो । तभी पतिदेव कहते है, ''देख,देख, इसमें तु तो कुत्तीया दिखाई दे रही हो ।''

काश, हमें कोई संत ऐसा कमंडल दे तो हमें भी समझे कि हम कैसे है ? मानव जीवन को पाकर भी

विषय वासना के गंदगी पर लेटनेवाले गधे के जैसे तो हम नहीं ? रोटी के टुकडे के लिये पूँछ हिलाने वाले पागल बनते कुत्ते - कुत्तिया जैसे तो नहीं है ?

अनादि काल से न जाने ऐसे कैसे कैसे संस्कार हमारे हृदय पटल पर अंकित हुए है ? ऐसे कुसंस्कारो को जब कुनिमित्तों का साथ मिलता है और जब जीव निर्ल्लज्ज बन जाता है तब उसका पतन हुए बिना रहता नहीं ।

दुनियामें कुनिमित्त अपने चारों और फैले हुए है । अनादि काल से विषय-वासना के कुसंस्कार आत्मा में पडे हुए है । क्या इस पंचम काल में, कलियुग में भी आपको अपनी आत्मा को बचाना है ? कुमार्ग से बचानेवाला और स्वयंको सन्मार्ग में स्थिर करने वाली एकमात्र औषधि कहो, जडीबुट्टी कहो या रामबाण इलाज कहो वह है लज्जा ।

लज्जाका स्वामी स्वंयमेव विषयवासना के गुलामी से मुक्त बन सद्‌गुणों के संस्कारो को मजबूत कर सच्चे धर्म को पाने की लायकता प्राप्त करें ।

१०. दयालु

पन्नेसे पन्ना मिले और पुस्तक बने....
मोतीसे मोती मिले और माला बने....
इंट पर इंट चढे और महल बने...

बस इसी तरह गुणों में गुण मिलते जाये और श्रावक जीवन बनता जाये ।

ऐसे श्रावक के गुणों का परिचय करते हुए आज दसवे गुण का परिचय पायेंगे । उसके लाभ समझकर उन गुणों को स्वीकार कर श्रावक जीवन को अलंकृत करें ।

''मूलं धम्मस्थ दया,
तयणुगयं सव्व मेवणुद्‌गणं,
सिध्दं जिणिंदसमअे
मग्गिज्जइ ते णिह दयालु ।।''

''दया धर्म का मूल है ।''

दया के अनुकुल ही सभी अनुष्ठान जिनेन्द्र के सिध्दान्त में कहे गये है । इसीलिये यहाँ पर दयालूता की माँग की है ।

आचारांग सूत्र में कहा है कि, ''मैं कहता हूं की जो तीर्थंकर भगवान हो गये है, अभी प्रवर्तमान है और आनेवाले काल में होंगे वे सब इस तरह कहते है, बोलते है, बताते है की ''सब प्राण, सब भूत, सब जीव और सर्व सत्य का घात नहीं करना, उन पर हुकूमत नहीं चलाना, उन पर कब्जा नहीं करना, उन्हें मार नहीं देना और उन्हें हैरान नहीं करना'' ऐसा पवित्र और नित्य धर्म लोक के दुःख को जाननेवाले भगवान ने बताया है ।

इस दया के रक्षणार्थ ही अन्य व्रत बतलाये है । दया के भाव के साथ यतनापूर्वक चलने से, यतनापूर्वक खडे रहने से, यतनापूर्वक बैठने से, यतनापूर्वक शयन करने से वैसे हि यतानपूर्वक खाने से और यतनापूर्वक बोलने से पाप कर्म का बंध होता नहीं ।

अन्य अजैन भी कहते हैं की -

न सा दीक्षा, न सा भिक्षा,
न तं दानं, न तं तपः ।
न तं ज्ञानं, न तं ध्यानं,
दया यत्र न विद्यते ।।

ऐसी कोई दीक्षा नहीं, ऐसी कोई भिक्षा नहीं, ऐसा कोई दान नहीं, ऐसा कोई तप नहीं, ऐसा कोई ज्ञान नहीं, ऐसा कोई ध्यान नहीं, जिसमें दया का वास न हो, दयालू को धर्म का अधिकारी कहा है क्योंकि ऐसा पुरुष थोडी सी जीवहिंसा के दारुण विपाक को जानता है अतः हिंसा में प्रवृत्त होता नहीं । हिंसा के भयंकर विपाक को बताकर दया के मधुर परिणाम का मूल्य दर्शाती ''यशोधरा चरित्र'' की कथा जानने योग्य है ।

उज्जयिनी नगरी, अमरचंद्र राजा, यशोधरा रानी, सुरेन्द्रदत्त राजकुमार, नयनावली धर्मपत्नी ।

एक बार अमरचंद्र राजा ने राज्य का भार सुरेन्द्रदत्त को सौंपकर आत्मकल्याण करनेवाली

भागवती दीक्षा अंगीकार की । सुरेन्द्रदत्त अच्छी तरह राज्य संभाल रहे हैं । एक दिन सारसिका नामक दासी ने राजा के सिर में सफेद बाल देखर कहा ''धर्म का दूत आया है ।'' राजा यौवन और जीवन की अस्थिरता, अनित्यता का विचार करने लगा । अत्यंत वैराग्य पाकर पिता के पदचिन्हों पर चलने के लिये प्रस्तुत हुआ, राजा ने गुणधरकुमार को राज्यभार सौंपा और पूर्व पुरुषों द्वारा आचरित श्रमणत्व अंगीकार करुं ऐसा चिंतन किया ।

राजा ने रानी से बात की, रानी ने कहा ''हे नाथ आपको ठीक लगे वह करो, मैं उसमे विघ्न नहीं डालुंगी । परंतु मैं भी आर्यपुत्र के साथ दीक्षा लुंगी, क्योंकि बिना चाँद चंद्रिका कैसे रह सकेगी ? राजा सोचने लगा की रानी को मुझपर अत्यंत प्यार है, वह मेरे विरह को सहन नहीं कर पायेगी ।

दिन अस्त हुआ, राजा संसार के स्वरुप का विचार करते करते शय्या में पडे, पर नींद नहीं आयी ।

रानी को लगा राजा सो गये है । वह शय्या में से निकलकर बहार आयी । राजा को लगा विरह सहन न होने के कारण मरने चली होगी । राजा तलवार लेकर पीछे गया क्या हो रहा है यह जानने के लिये । रानी ने जाकर महल के रक्षक कुबडे को उठाया उसके साथ अयोग्य चेष्टा करने लगी । राजा को अत्यंत क्रोध आया, तलवार से दोनों को मार डालने को तत्पर हुआ, परंतु पंचेन्द्रिय के घात के विचार से पीछे हट कर ली और अपने स्थान पर जाकर संसारकी एवं स्त्री चरित्र की विचित्रता पर चिंतन करने लगा ।

प्रभात में राजा ने उठकर मंत्रीश्वर को अपना अभिप्राय बताया । मंत्रीश्वर ने विनंती की ''हे देव ! जब तक गुणधरकुमार कवच धारण करनेवाला नहीं हुआ है तबतक आप को ही प्रजा का पालन करना चाहिये । मंत्रीश्वर की बात सुनकर राजा ने कहा ''हमारे कुल में पळित दिखाई देने के बाद गृहवास में किसी को देखा है ?

मंत्री ने कहा ''हे देव ! ऐसा तो किसी ने नहीं किया ?

दिन पूरा हो गया । रात को राजा ने स्वप्न देखा, सात भूमि वाले महल में सिहांसन पर वह बैठा हुआ है । उसको प्रतिकुल बोलने वाली माता ने नीचे गिराया, वहाँ से वह और उसकी माता गिरते गिरते पहली मंजिल पर आ पहूँचे, फिर भी उठकर जैसे तैसे वे मेरु पर्वत जैसे महल के शिखर पर चढे ।

राजा की नींद उड गयी । स्वप्नफल के बारे में वह चिंतन करने लगा । कुछ भयंकर होगा ऐसा उसे लगने लगा । फिर भी परिणाम अच्छा होगा ऐसा उसने सोचा । प्रभातकाल में नित्यक्रम कर राजा राजसभा में विराजमान हुआ । राजमाता यशोधरा पधारी, राजा उठकर सामने गया । माता ने पुत्र की कुशलता पूछी, राजा ने मातृकृपा से कुशलता है ऐसा जवाब दिया ।

राजा ने माता का अभिप्राय एवं अनुमति जानने के लिये बताया ''मैने स्वप्न देखा कि गुणधर कुमार को राज्य सौंपकर मैं प्रव्रजित हुआ हुं । बाद में मैने देखा की मैं धवलगृह से नीचे गिर गया ।

माता यह सुनकर भयभीत हो गयी । उसने बांये पैर से जमीन ठोककर टोटका किया और बोली ''इस स्वप्न के फल का विनाश करने के लिये गुणधरकुमार को राज्य सौंप कर तुम श्रमणधर्म स्वीकार करो ।'' राजा ने कहा ''माता की आज्ञा स्वीकार है ।'' यशोधरा माता ने कहा ''तुम गिर गये इसकी शांति करने के लिये बहुत सारे पशुपक्षी की बली देकर कुलदेवता की पूजा कर शांतिकर्म करेंगे'' राजा ने कहा ''हाय, हाय ! माताजी ये क्या कहती हो ? शांति धर्म से होती है हिंसा से नहीं, धर्म का मूल दया है, अभयदान से बडा धर्म इस पृथ्वीतल पर नहीं है ।''

माता पुत्र के बीच हिंसा अहिंसा के नाम से

वादविवाद हुआ । राजा मन में सोचने लगा कि '' एक तरफ माता के वचन का अपमान होता है और दूसरी तरफ जीवहिंसा होती है, अब मुझे क्या करना चाहिये ?'' गुरुजनों का वचनभंग न हो और व्रतभंग भी न हो ऐसा एक ही मार्ग दिखाई देता है, प्राणत्याग का, राजा ने म्यान से तलवार निकाली और चारों और हाहाकार हो गया । माता ने राजा का हाथ पकड लिया, और कहा ''वत्स क्या मैं तेरे पीछे जिंदा रहूँगी ? ऐसा कदम उठाने पर तुझे मातृवध का पाप लगेगा ।'' इतने में मुर्गे की आवाज आइ । मुर्गे की आवाज सुनकर राजा से कहा ''हे वत्स ! तुम इस मुर्गे को मारो । क्योंकि ऐसा आचार है कि, ऐसा काम करते हुए जिसका शब्द सुनने में आये उसे अथवा उसके प्रतिबिंब को मारकर अपना इच्छित कार्य पूर्ण करना चाहिये ।

राजा अपने जीवदया धर्म में अटल रहे । और बोले ''हे माता ! मैं मन,वचन,काया से किसी भी जीव को मारने वाला नहीं हूँ । तब माता ने कहा, ''हे वत्स, ऐसा ही है तो तुम आटे के बने हुए मुर्गे की बली चढा दो ।

माता की ममता और मोह के आगे पुत्र के विवेक चक्षु बंद हो गये । पुत्र माता का वचन मान्य करने के लिये तैयार हो गया । राजा की आज्ञा से कारीगरों ने आटे का मुर्गा बनाया, माता ने पुत्र द्वारा तलवार से कुलदेवता समक्ष आटे के मुर्गे की बली चढवा दी । कुलदेवता से प्रार्थना की, ''हे माताजी, इस मुर्गे से तुष्ट होकर मेरे पुत्र के कुस्वप्न का फल नष्ट किजीए ।''

फिर माताने पुत्र को उसका मांस खाने के लिये कहा । पुत्र कहता है ''हे माता । विष खाना अच्छा पर नर्क का द्वार खोलनेवाले ऐसे त्रस जीवों के उत्पत्ति वाला दुर्गंधमय अति बिभत्स मांस खाना अच्छा नहीं ।

यशोधरा माता के अत्यंत आग्रह करने से राजा ने आटे के मुर्गे का मांस खाया ।

दुसरे दिन पुत्र का राज्याभिषेक कर राजा दीक्षा लेने तैयार हुए । तब पत्नी ने कहा ''हे आर्यपुत्र, पुत्र को प्राप्त राज्य की खुशी का आनंद आज मनाकर मैं भी कल दीक्षा लूंगी, एक दिन रुक जाओ ।

राजा ने मन में विचार किया, ''वचन और आचार में विरोधाभास दिखाई देता है, वह स्त्री क्या करेगी ? दूसरी तरफ रानी विचार करने लगी ''यदि मैं राजा के पीछे प्रव्रज्या नहीं लुंगी तो मुझ पर महाकलंक लगेगा । पर यदि किसी तरह मैं राजा को मार डालूं तो बालपुत्र के पालन के लिये राजा के पीछे नहीं मरुंगी तो दोष नहीं गिना जायेगा । अतः ऐसा ही कुछ करुं ।

यह जीव संसार के सुखों के पीछे कितना पागल है ? ऐहिक सुखों को पाने और टिकाने के लिये परमेश्वर जैसे पति को मार डालने को तैयार हो जाती है । पंचेन्द्रिय मनुष्य का घात करने के लिये प्रयत्नशील बनती है । हृदय में से दया करुणा को निकालकर वह पत्थरदिल बन जाती है । ऐसा पत्थरदिल मनुष्य ही हत्या कर सकता है ।

ऐसी कठोर दिल रानी ने राजा के भोजन में विष मिलाया । राजन विषप्रयोग को समझ गये । तुर्त ही विष उतारने वाले वैद्यों को बुलाया । रानी ने सोचा वैद्य समय पर आ गये तो पूरी बाजी पलट जायेगी । अतः रानी शोक का प्रदर्शन करते हुए राजा पर गिरी और राजा के गले को अंगूठे से दबाकर राजा को मार डाला ।

राजा आर्तध्यान में आयुष्य पूर्ण करनेसे तिर्यंचगति को प्राप्त हुआ ।

राजा और उनकी माता मुर्गे के वध के भाव से आटे के मुर्गे की हत्या के कारण मोर,कुत्ता, नेवला, सर्प, मत्स्य, शिशुमार, भेड, बकरी, भैंस और मुर्गे के भव में भ्रमण किया ।

हे जीव । तुझे भवभ्रमण टालना हो, भवपार जाना हो तो सब प्रकार की जीवहिंसा का त्याग कर, जीवदया को हृदय में धारण कर ।

मुर्गे के भव में पुण्ययोग से मुनिदर्शन एवं मुनिवाणी का योग प्राप्त हुआ । अपने भवभ्रमण की बात सुन जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई । श्रावकधर्म का यथाशक्ति स्वीकार कर हर्ष से नाचने लगा ।

आवाज करने लगा ।

गुणधर राजकुमार ने स्वरवेधी हूँ यह बताने के लिये शब्द की दिशा में तीर चलाया और मुर्गा धराशायी हुआ । आयुष्य पूर्ण कर गुणधर की पत्नी जयावली के गर्भ में पुत्ररुप से उत्पन्न हुआ, और यशोधरा का जीव पुत्रीरुप से उत्पन हुआ ।

गर्भ के प्रभाव से जयावली को जिनप्रवचन सुनने की इच्छा उत्पन्न हुई । अभयदान देने की भावना होने लगी । सब जीवों को अभयदान देने का दोहद उत्पन्न हुआ । गुणधर राजा ने नगर में अमारि पडह बजवाकर पूर्ण किया ।

पुत्र-पुत्री युगल का जन्म हुआ । राजा ने महोत्सव मनाया । राजा ने उनका अभय और अभयमति नाम रखा । ज्ञानी मुनि भगवंत के सान्निध्य से पूर्वभव जानकर, जातिस्मरण ज्ञान पाकर संयम का स्वीकार किया, शुद्ध संयम की आराधना कर देवलोक गये ।

देवलोक में से फिर मनुष्यभव पाकर संयम की साधना कर संपूर्ण घाति कर्मों का नाश कर कैवल्य पाया । मोक्ष नगरी में विराजमान हुए ।

कैसा अनोखा महिमा है दया का । और कैसे भयानक, क्रुर और कठोर भावों का एवं हिंसा का परिणाम ?

अनादिकाल से हम अज्ञानता से हिंसा के परिणामों में खोये हुए है । हिंसा से सतत जीव के परिणाम कलुषित बनते जाते है । आत्मा कर्मबंधन से भारी बनता जाता है । जिसके फलस्वरुप चार गति और चौर्यासी लाख जीवयोनि में हम भ्रमण करते रहते है ।

जब तक कटोरता जाती नहीं, तब तक कोमलता, ऋजूता आती नहीं । हिंसा के भाव तिरोहित होते नहीं तो दयाका गुण आता नहीं । जीवन में धर्मरत्न को पाने के लिये दयाभाव का प्रगटीकरण अत्यंत आवश्यक है । दया से ही दिव्यता और भव्यता की प्राप्ति होती है ।

जहाँ पानी है, जमीन गीली है वहाँ हरियाली अपने आप छा जाती है । बस इसी तरह जहाँ जिनवाणी है वहाँ हृदय में गीलापन आ जाता है । वहाँ सब प्रकार की हरियाली, सुखशांति स्वंयमेव फैल जाती है । जहाँ अंतर में आर्द्रता नहीं, दयाके भाव नहीं, वहाँ क्रुरता और कठोरता हरियाली को कुचल डालती है । वहाँ सब विरान बन जाता है ।

विचार कर लो, ऐसा मौका फिर कभी नहीं मिलेगा । कठोरता और क्रुरता की अनादि की दोस्ती का अंत लाने के लिये ऐसा भव फिरसे नहीं मिलेगा । धर्म का पान कर खुद को समझाने के लिये कटिबद्ध बनो । कठोरता का क्रुरता के साथ का रिश्ता तोडकर दया के साथ रिश्ता जोड दो । जीवन जीने लायक बनेगा । जीवन धन्य बन जायेगा । अनादि के गलत रीतीसे छुडाये जानेवाले गलत सवाल, सच्ची रीत से छुडाने का समय द्वारपर आ गया है । अब विलंब मत करो । हे जीव ! इस अवसरका जीवन में स्वागत कर ले । आनंद, आनंद से स्वीकार ले । दया का जब हृदय में वास होगा तब जीवन में परमानंद छा जायेगा । रोम-रोम में आनंद की उर्मियां उठेंगी । जीवन की सच्ची धन्यता अनुभूत होगी । दोस्ती का हाथ मिला दे, दया के साथ फिर देखले सुखद परिणाम ।

आलोक में सुख, मरण में समाधि और परलोक में सद्गति ।

आठ प्रकारकी दया -

दया के विविध अपेक्षासे और शुद्धि के आधार पर आठ प्रकार बताये गये है -

१) द्रव्यदया - जयणा के साथ जीवरक्षा पूर्वक प्रवृत्ति वह द्रव्यदया है ।

२) भावदया - अन्य जीवों के प्रति उनके आत्मीय गुणस्वरुप ज्ञानादि के योगक्षेम का विचारपूर्वक आचरण वह भावदया है ।

३) स्वदया - कषायादि भावशस्त्रों से आत्मस्वरुप के गुणों का घात होने न देना वह स्वदया है ।

४) परदया - अन्य की द्रव्य से या भाव से दया करना वह परदया है । स्वदया चूककर की जानेवाली परदया शास्त्रसंमत नहीं ।

५) स्वरुपदया - पुद्गल सुखार्थ एक दूसरे की देखा देखी से की गयी जीवदया, वह स्वरुपदया है । दिखने में ही दया है, परंतु स्वपर कल्याण के हित की ओर दुर्लक्ष्य रहा तो वह भावहिंसा जानना।

६) अनुबंधदया - शुभ आशय से प्रवृत्ति करने पर भी अनिवार्य रुप से जीवों की हिंसा हो तो वह अनुबंध दया है ।

७) व्यवहारदया - विधिमार्गानुयायी सब क्रियाएं विधिपूर्वक करें, जीवदया का पालन करें वह व्यवहार दया है ।

८) निश्चयदया - शुद्ध साध्य उपयोग में एकत्व भाव से स्थिर रहना वह निश्चय दया है ।

इस प्रकार दया के विविध भावों को जानकर, समझकर हम निश्चयदया में पहुँचने का सच्चा पुरुषार्थ करें यह अत्यंत आवश्यक है । और वही सच्चे धर्म का मर्म है ।

११. मध्यस्थ सौम्यदृष्टि

''दया धरम का मूल है'' इस उक्ति के अनुसार धार्मिक वृत्ति का जीव दयालू होना चाहिये । कठोर दिल मनुष्य सच्चे धर्म को कभी भी आचरण में नहीं ला सकता । धर्म दुसरा कुछ भी नहीं सच्ची दयाका शुध्द आचरण है । इस सत्य को जान लेने के बाद श्रावक के गुणों के परिचय में आगे बढते ग्यारहवें गुण में शास्त्रकार महर्षि क्या कह रहे है, इसे समझने का यत्किंचित प्रयास करेंगे ।

मज्झत्थ सोमदिट्ठो
धम्मविचारं जहट्ठिय सुणइ,
कुणइ गुण संपओगं
दोसे दूरं परिच्चयइ ।।

धर्म करने के लिए हृदय में दया तो होनी ही चाहिये परंतु उसके साथ साथ एक अनोखी बात बताते हुए कहते है, दृष्टि में मध्यस्थता और सौम्यता चाहिये ।

मध्यस्थ और सौम्य दृष्टिवाला साधक सही धर्म विचारों को सुन सकता है और गुणों के साथ जुडकर दोषों को त्याग सकता है । अतः श्रावक बनने की योग्यता प्राप्त करने के लिए व्यक्तिने सर्वप्रथम मध्यस्थ और सौम्य दृष्टि मिलानी चाहिये, साधनी भी चाहिये ।

मध्यस्थ याने क्या ?

मध्यस्थ याने क्या यह प्रश्न मनमें उठना साहजिक है । इसीलिये धर्मरत्न प्रकरण की टीका में इस प्रश्न का जवाब देते हुए विवेचनकार कहते है कि -

मध्यस्था कचिंद् दर्शने
पक्षपातविकला सौम्याय प्रद्वेषाभावद्दृष्टि
दर्शनं यस्य स माध्यस्थ सौम्यदृष्टिः
सर्वत्रा रक्ताद्विष्ट इत्यर्थ :

अर्थात मध्यस्थ का मतलब किसी भी दर्शनमें पक्षपात रहित और प्रद्वेष न होने से सौम्य ऐसी दृष्टि याने देखनेकी नजर जिसकी हो वह मध्यस्थ सौम्यदृष्टि कहा जाता है, अर्थात जो सब जगह रागद्वेष रहित हो वह मध्यस्थ सौम्य दृष्टि मानना ।

ऐसी दृष्टिवाला व्यक्ति अनेक पाखंडियोंके मंडप में उपस्थित धर्मरुपी माल के स्वरुपको यथाव्यवस्थितपने याने सगुणको सगुणपने, निर्गुण को निर्गुणपने, अल्पगुणी को अल्पगुणपने और बहुगुण को बहुगुणपने, सुवर्ण की परीक्षा में कुशल होने से सुवर्ण को ग्रहण करनेवाले पुरुष के समान पहचान ले ।

आज के समय में इस दृष्टि की नितांत आवश्यकता है, क्योंकि आज कौवे ज्यादा है, कोयल कम है, बगुले बहुत है, हंस अल्प है, सच्चे हीरे कम है, खोटे हीरे बहुत है, रत्न अल्प है, कंकड बहुत है ।

सच्चे संत बहुत कम है, नकली पार बिना के है । पाखंडी बढते जा रहे हैं, सच्ची माध्यस्थ और सौम्य दृष्टि के बिना सच्चे को पहचानना बहुत मुश्किल है ।

''हीरा मुखसे ना कहे लाख टका मेरा मोल'' इस उक्ति अनुसार सच्ची व्यक्तियाँ कभी भी अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करती । जबकी झूठे बनावटी, नकली बन बैठे हुए ''बडे आदमी'' प्रचार के किसी माध्यम को या किसी मौके को छोडते नहीं, छोडने को तैयार नहीं । ऐसे समय जिसके पास मध्यस्थ दृष्टि नहीं है वह सौम्य दृष्टि को किस तरह पा सकते है ? अर्थात नहीं पा सकते ।

ऐसे समय में जिसे मोक्षसाधना करनी है, उसके लिये मार्ग पाना और सद्गुरु प्राप्त करना अत्यंत कठीन है ।

नये नये पंथ और धर्म बढ रहे है । मोक्ष का सच्चा इच्छुक मुमुक्षु जीव ज्यादा और ज्यादा संभ्रमित हो गया है । इसका एकमात्र कारण है - उसके पास परीक्षा कर सत्य प्राप्त करने की मध्यस्थ सौम्य दृष्टि नहीं है ।

हंस की चोंच में ऐसा महान गुण है कि उसके पास दुधपानी एकसाथ कर दिया जाय तो, तो भी दूध और पानी अलग कर लेता है ।

सच्चे जवाहीर के सामने हीरे और कांच के टुकडे रखने में आये तो अपनी पारखी नजर से वह सच्चे हीरोंको पहचान लेता है । हीरों को परखने की दृष्टि उसके पास है ।

सुनार के पास कंचन के टुकडों के साथ पित्तल के चमकते टुकडे ले जाये तो वह अपने कसोटी के पत्थर पर घिसकर पितल और सुवर्ण को अलग कर देता है ।

उसी तरह आज के कलिकाल में जिसके पास सत्य धर्म और सत्य धर्मी को, सद्गुरु को और कुगुरु को पहचान ने की अजब गजब शक्ति नहीं है, मध्यस्थ दृष्टि नहीं है, वह सत्य मार्ग को, सही मार्ग को प्राप्त करने में समर्थ नहीं बनता । सच्चे गुरु और धर्म को बिना पाये वह मार्गभ्रष्ट हो जाता है, भटक पडता है, मार्गच्युत हो जाता है ।

लकडे में अग्नि है, पर उसके लिये माचीस की तीली चाहिये । थोडा घासलेट चाहिये, घासलेट डालकर फिर सुलगाया जाय तो अग्नि प्रगट हुए बिना रहती नहीं ।

पृथ्वी में अनाज है, परंतु उसके लिये हल चलाना पडेगा । खाद डालना पडेगा, बीजों का वपन करना पडेगा । पानी देना होगा, इतना सब पुरुषार्थ हो तो अनाज प्राप्त होता है ।

दूध में घी है , पर उसके लिये दूध में छास का जामन डालना पडता है । दही की छास बनानी पडती है । मथकर मख्खन निकालना पडता है । मख्खन को तपाना पडता है । तब जाकर कहीं घी प्राप्त होता है ।

कपास में कपडे अंतर्हित है । पर उसके लिये कपास को जिनिंग में डालना पडता है, रु की गठाने बनानी पडती है, गठानें मील में भेजनी पडती है, रु में से सुत निकालना पडता है, फिर सुत को शाळपर बुनना पडता है, तब जाकर कहीं कपडा तैयार होता है ।

उसी तरह अपने हृदय में ही भगवान है । परंतु पर भक्ति और परमार्थ के बिना झटपट नहीं मिलते । मेहनत और पुरुषार्थ चाहिये । सद्गुरु का मार्गदर्शन चाहिये ।

कडवी परंतु सही औषधि देने में आये और पथ्यपालन हो तो दर्द गायब हो जाता है । वर्तमान में तो उंटवैद्य के समान आचार्य महंत, गुरु आदि बहुत बढ गये है । जैसे हलदी की गांठ से गांधी नहीं बना जाता, या औषधियों का अल्पज्ञान हो उसे तो उंट वैद्य ही कहा जाता है, उसी तरह नकली गुरुओंसे, कुगुरुओं से कुछ भी प्राप्त नहीं होता , उनकी सहायता से मोक्षप्राप्ति हो नहीं सकती ।

ऐसी मध्यस्थ सौम्य दृष्टि की जो सत्य को पहचान सके, समझ सके ऐसी बुद्धिवाला ही सच्चे धर्म को पा सकता है । यह बात सोमवसु ब्राह्मण की कथासे जाना जा सकता है ।

कौशांबी नामक नगरी थी, वहाँ पर सोमवसु नामक जन्म से ही अति दरिद्री ब्राम्हण रहता था । धर्मश्रध्दालु था परंतु जहाँ हाथ डालता था वहाँ निष्फलता मिलनेसे वह धीरे धीरे धर्मश्रद्धा गँवाने लगा

। एक दिन धर्मफल सुनते हुए उसने धर्म पाठक से सुना कि ''देवगण को पुज्य ऐसा इन्द्रपना, बहुत सुखभोग समाग्रीवाला चक्रवर्तीपना, बलदेवपना, वासुदेवपना, दुनिया को चमत्कृत करनेवाली पदवीयाँ, चतुरंगी सेनाएं, लक्ष्मी आदि, ज्यादा क्या कहे इंद्र भी जिन्हे पूजते है ऐसा महासुखमय अरिहंतपना यह सब धर्मरुप कल्पवृक्ष का फल है ।''

यह बात सुन सोमवसु ब्राम्हण ने कहा कि '' हे धर्मगुरु, आपकी बात सत्य है, अत्यंत सत्य है परंतु कृपा कर मुझे बताईये की ऐसा धर्म किसके पास से लेना ?''

धर्मशास्त्र पाठक ने सोमवसु ब्राम्हण को जवाब देते हुए कहा ''हे भद्र, मीठा खाना, सुखसे सोना और खुद को लोकप्रिय करना इन तीन पद को जो बराबर जानता हो और बराबर पालन करता हो उसके पास से तुझे धर्म लेना चाहिये, जिससे तुं भद्रपद पायेगा ।''

धर्मपाठक के कथन को सुनकर सोमवसु ने कहा ''इन पदों का अर्थ क्या है ?''

धर्म पाठक ने कहा ''इसका अर्थ परमार्थ तो जो निर्मल बुद्धि का होगा वही जानता है ।''

अब शुद्ध धर्म को पाने की जिज्ञासा से सब दार्शनिकों को पूछते पूछते सोमवसु भिक्षा के समय एक गांव में पहूँचा । वहाँ एक सन्यासी की कुटिर में पहुँचा । वहाँ उसका अतिथि बना । थोडीही देर में सन्यांसी भिक्षा के लिये गया । भिक्षा लेकर आया । दोनो ने भिक्षा से उदरपूर्ति की । फुरसद में दोनो धर्मचर्चा करने लगे । सोमवसु ब्राम्हण ने धर्म का तत्व पूछा । सन्यासीने बताया ''सोम नामक गुरु के हम दो शिष्य है, यश और सुयश । गुरुने हमें ''मीठी खाना, सुखसे सोना और लोकप्रिय बनना'' ऐसे तत्वका उपदेश दिया । परंतु हमारे गुरु उसका अर्थ समझाये बिना ही परलोक वासी हुए हैं, अतः मै मेरे मति से उसका अर्थ निकालकर गुरुवचन की आराधना करता हूँ ।

सोमवसु ने पुनश्च पूछा '' आप इन पदोंका कैसा अर्थ करते है ? '' संन्यासीने जवाब दिया '' हे भद्र, नगर जनों को मंत्र औषधि बताता हूँ । उसके कारण लोग मुझे भिक्षा में मिष्टान्न देते है, वह खाता हूँ और इस मढी में (झोपडीमें) सुखपूर्वक सोता हूँ ।

संन्यासी की बात सुनकर सोमवसु ब्राम्हण अपनी मध्यस्थ एंव सौम्य दृष्टि से विचार करने लगा यह तो गुरु के कहे हुए वचनों का केवल बाह्य अर्थ ही समझ पाया है । उसके रहस्य को प्राप्त नहीं कर सका है, क्योंकि गुरु का अभिप्राय ऐसा तो हो नही सकता ।

ऐसा सोचकर संन्यासी के गुरुभाई कहाँ रहते है उनकी जानकारी ली और उनके पास तत्व जिज्ञासा से चल पडे । वहाँ धर्मचर्चा करते हुए सुयश संन्यासी को गुरुवचन का अर्थ पूछा, उसने कहा ''हे भद्र, मैं एक दिन छोड खाना खाता हुं अतः मुझे भोजन मीठा लगता है । ध्यान और अध्ययन में प्रशांत रहकर जहाँ तहाँ सुख से सो जाता हुं और निरीह रहने के कारण लोकप्रिय रहा हुं, इस तरह गुरुवचन का पालन करता हुं ।

मध्यस्थ एवं सौम्य दृष्टिवाले स्वामी सोमवसु ब्राम्हण सोचने लगा ''पहले शिष्य से यह शिष्य अच्छा है, परंतु गुरुवचन इस से भी अति गंभीर लगते है । अतः उनका अभिप्राय कौन बता सकेगा ?''

ऐसा विचार करते वह ब्राम्हण पाटलीपुत्र आया । वहाँ शास्त्र के परमार्थ को जाननेवाले, जैन सिध्दान्त में कुशल त्रिलोचन नामक पंडित के घर का अत्यंत आदर्श व्यवहार देखकर अवसर पाकर उनके पास पहुंचा । वहाँ जाकर त्रिलोचन पंडित के चरणस्पर्श कर कहा ''हे महापंडित मैं दीक्षा लेने की इच्छा रखता हुं, अतः कृपा कर के मुझे बताओ मैने किसके पास दीक्षा लेनी चाहिये ?''

तब महापंडित ने कहा ''मीठा खाना, सुख से सोना और लोकप्रिय होना '' ऐसे तीन पद बोलता हो और पालता हो उसके पास दीक्षा लेना।

जवाब सुनकर सोमवसु ने पुनश्च प्रश्न किया ''महापंडितजी आपके बताये हुए पदों का परमार्थ क्या है ?''

पंडित महाशय ने कहा '' हे भद्र, जो खुद के लिये खुद ने नहीं बनाया हुआ, अन्यसे नहीं कराया हुआ, वैसे

ही उसके उद्देश्य से भी नहीं बनाये हुए ऐसे विशुद्ध आहार पानी, मणी मंत्र, मूल तथा औषधि का प्रयोग किये बिना मधुकर की वृत्ति से रागद्वेष रहितपने वापरता है, वह परमार्थ से इस जगत में मीठा खाता है ।

जो सकल मानसिक चिंताएं छोड शुभ ध्यान और संयम में उद्यम रहकर गुरु की अनुज्ञा से विधीपूर्वक रात को सोता है वह सुखपूर्वक सोता है ''वैसे ही जो धन-धान्य, सुवर्ण, रौप्य, रत्न, चतुष्पद आदि तमाम द्रव्यों में हमेशा निस्पृह रहता है वही लोकप्रिय होता है ।

यह सुनकर त्रिलोचन को समोवसु कहने लगा ''हे परमार्थ के ज्ञाता तुम्हें मेरा नमस्कार हो ।''

यह सुनकर त्रिलोचन ने कहा ''हे भद्र, मैं तो कहता हूं कि तुम सुलक्षण हो, क्योंकि मध्यस्थ रहकर तुम सच्चा धर्म विवेक से देख सकते हो ।''

वहाँ से आज्ञा लेकर सोमवसु ब्राम्हण सद्गुरु के खोज में निकलता है । वहाँ प्रासुक आहार की खोज में, युगमात्र रखी हुई नीची नजर से चलते हुए जैन श्रमण देखे । हर्षित होकर अपना मनोरथ पूर्ण हुआ ऐसा जानकर उनके पीछे पीछे चलते हुए उद्यान में विराजमान ''सुघोष'' गुरु को वंदन कर तीन पदों का परमार्थ पूछा । उन्हों ने महापंडित ने बताया हुआ अर्थ ही बताया ।

प्रथम पद का पालन करते हुए मुनि को उसने अपनी नजर से देखा था । अब अन्य पदों के पालन को जानने के लिये सोमवसु रात को वहीं रुका ।

रात्री होते ही आवश्यकादि कर पोरिसी भणाकर आचार्य भगवंत की अनुज्ञा लेकर आगम की विधि से मुनिगण सोये अतः दुसरे पद का पालन देखा ।

तब तक तो आचार्य भगवंत जागृत हो गये । उपयुक्त होकर ''वैश्रमण'' नामक अध्ययन का परावर्तन करने लगे । कुबेर देवता का आसन चलायमान हुआ और वे तत्काल वहाँ उपस्थित हुऐ । वैश्रमण एकाग्र चित्तसे सुनने लगे । आचार्य भ. का. ध्यान पूर्ण होते ही वैश्रमण चरणों में नमन कर कहने लगा ''जो चाहिये वह माँगो ।'' तब आचार्य भगवंत ने प्रत्युत्तर में कहा ''तुझे धर्म का लाभ हो ।'' गुरुमुख से धर्मलाभ स्वीकार कर दैदिप्यमान, मनोहर, रुपवान वह कुबेर अति हर्षित हुआ और पुनः चरणों में वंदन करता हुआ स्वस्थान पर चला गया ।

गुरु भगवंत की निस्पृहता देख अत्यंत हर्षित होते हुए सोमवसु ब्राम्हण ने गुरुदेव को अपना पूर्ण वृत्तांत बताया । सुघोष गुरुदेव के पास उसने संयम स्वीकार किया और सुंदर आराधना कर वह सद्गति को प्राप्त हुआ ।

कैसी अजब-गजब शक्ति है मध्यस्त सौम्य दृष्टि में ।

कब मिलेगी हमें यह शक्ति ?

कब तिर जायेंगे यह संसार ?

जीव-विचार

नारकी तिर्यंच और मनुष्य के भेद जानने के पश्चात अब देवगति को पाये हुए देवों के भी कितने अलग अलग भेद हैं, यह जानने जैसा है -

दस हा भवणा ऽ हिवई अट्ठ-विहा वाणमंतरा हुंति ।
जोइसिया पंच-विहा दु-विहा वेमाणिया देवा ।।२४।।

भवनपति दस प्रकार के, व्यंतर आठ प्रकार के ज्योतिष के पाँच प्रकार तथा वैमानिक देव दो प्रकार के है ।

भवन में रहने वाले देव भवनपति के नाम से पहचाने जाते है । ये देव दिखने में कुमार जैसे होने से इनके नाम के पश्चात कुमार शब्द जोडा जाता है ।

ये देव खिलाडी वृत्ति के, सुंदर, आनंदी और शौकीन देव है । रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक पृथ्वी का एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण प्रतर है, उसके उपर का एक हजार योजन का परिमाण एवं नीचे का एक हजार योजन का परिमाण छोडकर शेष १,७८००० योजन परिमाण में तेरह प्रतर हैं, जिनमें स्थित नराकावासों में नारकी जीव रहते हैं । उन प्रतरों के मध्य में स्थित बारह अन्तरों मे से उपर-नीचे का एक एक अन्तर छोडने पर शेष दस अन्तरों में जो भवन स्थित हैं, उनमें रहने वाले देवों को भवनपति देव कहते है ।

भवनपतियों के आवासों के उपर रत्नप्रभा नारकी के उपर के एक हजार योजन के पृथ्वी प्रतर में से उपर नीचे के सो-सो योजन छोडकर बीच के आठसो योजन में व्यंतरदेव रहते हैं ।

व्यंतर का दो प्रकार का अर्थ होता है । व्यंतर याने अंतर बिना के अथवा विविध प्रकार के अंतर वाले ।

व्यतंर देवों के उपर के १०० योजन रत्नप्रभा नारकी पृथ्वी में उपर और नीचे दस दस योजन छोडकर बीच के अस्सी योजन में आठ वाणव्यंतर रहते हैं । वन में घूमने से और रहने से वे वाणव्यंतर कहलाते हैं ।

अपनी पृथ्वी से (समभूतलासे) ७९० योजन उपर तारों का विमान है, समभूतला से ८०० योजन उपर सूर्य का विमान है, समभूतला से ८८० योजन उपर चंद्र का विमान है । समभूतला से ८८४ योजन उपर नक्षत्रों के विमान हैं । समभूतला से ९०० योजन उपर ग्रहों के विमान है ।

ढाईद्वीप में ज्योतिष्क के सभी विमान मेरु पर्वत की प्रदिक्षणा करते आजुबाजू घूमते हैं । घूमते रहने के कारण चर कहलाते है । ढाईद्वीप के बाहर ज्योतिष्क चक्र के विमान स्थिर होते हैं ।

विचित्र प्रकार के माप वाले विमानों में उत्पन्न होते देव वैमानिक कहलाते हैं । ये वैमानिक देव दो प्रकार के हैं - १. कल्पोपन्न और कल्पातीत जिस तरह मनुष्यलोक में सामजिक व्यवस्था है उसी तरह कितनेक देवलोक में भी राजादेव, नोकरदेव वगैरह की व्यवस्था होती है । इस तरह की व्यवस्थावाले देव वो कल्पोपन्न देव और ऐसी व्यवस्था नहीं है वह देव कल्पातीत देव कहलाते है । परमात्मा तीर्थंकरों के कल्याणको में महोत्सव आदि करने का आचार कल्पोपन्न देवों का है ।

नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर ये कल्पातीत है, बाकी के सभी देव कल्पोपन्न है । देवों का राजा इन्द्र कहलाता है । सब मिलकर कुल चौसठ इन्द्र है, जो इस प्रकार है -

१० भवनपति के २० इंद्र (प्रत्येक के दो दो)
८ व्यंतर के १६ इंद्र (प्रत्येक के दो दो)
८ वाण व्यंतर के १६ इंद्र (प्रत्येक के दो दो)
१० ज्योतिष्क के २ इंद्र (चंद्र और सूर्य)
१२ वैमानिक के १० इंद्र
कुल ६४ इंद्र

सब मिलकर देवों के ९९ भेद नीचे मुजब होते है-

८ व्यंतर, ८ वाणत्यंतर, १० भवनपति, १५ परमाधामी, १० तिर्यंग् जृंभक, १० ज्योतिष्क, ३ किल्बीषिक, १२ वैमानिक, ९ लोकांतिक, ९ ग्रेवेयक और ५ अनुत्तर - कुल ९९

इन ९९ भेद के पर्याप्त और अपर्याप्त इस तरह भेद

करने पर कुल एक सौ अठ्यानवें (१९८) भेद होते हैं ।

देव सभी पर्याप्त ही हैं, पर जहाँ तक वो उनकी पर्याप्ति पूरी नहीं करते तब तक वो अपर्याप्त गिने जाते हैं । स्वयोग्य पर्याप्ति पूरी करने के बाद वही देव पर्याप्त कहलाते हैं ।

देवलोक के नाम :- देवगति को पाने वाला जीव भी भिन्न पुण्य के कारण भिन्न भिन्न स्थान पर जाते है । देवों के रहने के स्थान उपर भी है, उसी तरह जमीन के नीचे के भाग में भी है । उपर रहने वाले देव उच्च पुण्यबल वाले होते हैं, जबकि नीचे के भाग में रहने वाले देव अल्प पुण्यबल वाले होते हैं ।

नीचे के भाग में रहनेवाले देवों के मुख्य पांच प्रकार है ।

१) भवनपति - भवन में रहनेवाले भवनपति देवों के दस प्रकार हैं -

१) असुरकुमार २) नागकुमार ३) सुवर्णकुमार ४) विद्युतकुमार ५) अग्निकुमार ६) द्वीपकुमार ७) उदधिकुमार ८) दिशिकुमार ९) पवनकुमार १०) स्तनितकुमार

२) परमाधामी - नरक के जीवों को विविध दुःख देने वाले परमाधामी देवों के पंद्रह प्रकार है -

१) अंब २) अंबरीय ३) श्याम ४) शबल ५) रुद्र ६) उपरुद्र ७) काल ८) महाकाल ९) असीपत्र १०) वन ११) कुंभी १२) वालुका १३) वैतरणी १४) खरस्वर १५) महाघोष

३) व्यंतर - परमात्मा के समवसरणादि की रचना करनेवाले तथा कौतुकप्रिय ऐसे व्यंतर देवों के आठ प्रकार है -

१) पिशाच २) भूत ३) यक्ष ४) राक्षस ५) किन्नर ६) किंपुरुष ७) महोरग और ८) गंधर्व

४) वाण व्यंतर - शाप देना, झगडा करना, हेरान करना उसी प्रकार अच्छा भी करना ऐसे स्वभाववाले और शक्तिवाले ये व्यंतर देव भी आठ प्रकार के होते हैं -

१) अणपन्नी २) पणपन्नी ३) इसिवादी ४) भूतवादी ५) कंदित ६) महाकंदित ७) कोहंड ८) पतंग

५) तिर्यग् जृंभक - तीर्थंकरादि पुण्यवानों के यहाँ धनधान्यादि वस्तुएं देने वाले ये देव दस प्रकार के हैं -

१) अन्नजृंभगा २) पानजृंभगा ३) वस्त्रजृंभगा ४) घर (लयन) जृंभगा ५) पुष्प जृंभगा ६) फल जृंभगा ७) पुष्पफल जृंभगा ८) शयन जृंभगा ९) विद्या जृंभगा १०) अवियत जृंभगा ।

ये जाति के देव जिस जिस भवन में रहते हैं, वो वो भवन भी जृंभगा उसी देवलोक के नाम से पहचाना जाता है, इसलिये देवलोक के नाम भी उपर मुजब जानना ।

जमीन के उपर के भाग में रहने वाले देवों के मुख्य छः प्रकार हैं -

१) ज्योतिषी - ज्योतिषी देवो के चर और स्थिर ऐसे दो विभाग है और प्रत्येक निम्नानुसार पाँच पाँच प्रकार के है ।

१) सूर्य २) चंद्र ३) ग्रह ४) नक्षत्र ५) तारा

२) वैमानिक - ये देव बारह प्रकार के है -

१) सौधर्म २) इशान ३) सनतकुमार ४) माहेंद्र ५) ब्रह्मलोक ६) लांतक ७) महाशुक्र ८) सहस्त्रार ९) आनन १०) प्राणत ११) आरण १२) अच्युत

३. लोकांतिक - प्रभु की दीक्षा के समय प्रभु को तीर्थ की स्थापना की विनंती करने वाले ये देव लोकांतिक देव है, ये नव प्रकार के है -

१) सारस्वत २) आदित्य ३) वन्हि ४) अरुण ५) गर्दतोय ६) तुषित ७) अव्याबाध ८) मरुत ९) अरिष्ट

४. किल्बिषिक - सामान्य भाषा में कहें तो चंडाल जाति के देव किल्बिषिक देवों के तीन प्रकार है -

१) प्रथम प्रकार के किल्बिषिक पहले और दूसरे देवलोक के नीचे रहते है ।

२) दूसरे प्रकार के किल्बिषिक तीसरे देवलोक के नीचे रहते है ।

३) तीसरे प्रकार के किल्बिषिक छठवे देवलोक के नीचे रहते है ।

५. ग्रैवेयक : ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के है -

१) सुदर्शन २) सुप्रतिबद्ध ३) मनोरम ४) सर्वतोभद्र ५) सुविशाल ६) सुमनस ७) सौनमनस ८) प्रियंकर ९) नंदिकर

६. अनुत्तर - अनुत्तर देवों के पाँच प्रकार है -

१) विजय २) वैजयंत ३) जयंत ४) अपराजित ५) सर्वार्थ सिद्ध

उपरोक्त सभी देवों की क्रमश ज्यादा से ज्यास ऋद्धि-सिद्धि होती है । पर इन्हें मोक्ष में जाना हो तो

नव - तत्व.... (संवर तत्व)

अनादि कर्म बंध के निमित्त से घिरा हुआ जीव कैसे कैसे कर्म उपार्जन करता है ? जिसके कारण कैसे फल भोग कर कैसे दुःख दुर्गति का भोग बनता है । यह तो हम संसार में अपनी आंखो से देख रहे हैं । फिर भी चित्र विचित्र कर्म और उसके निमित्तो से बचने के भाव क्यों नहीं जागते ? ऐसे निमित्तो को दूर करने में जीव क्यों पीछे रहता है ?

कारण एक ही दिखाई देता है, संवर तत्व का अज्ञान । संवर तत्व का अज्ञान आत्मा को विकास करने से अटकाता है, आश्रव की शरणागति सरल है क्योंकि अनादिकाल से जीव ने वही आचरण किया है । जबकी संवर की शरणागति खूब कठिन है, सख्त परिश्रम मांग लेता है । संसार के और कर्म के प्रवाह में बहते रहना सभी जीवों के लिए सहज है, ऐसी प्रवृति जीव करता आया है, उसके संस्कार मजबूत हैं । पर कर्म के प्रवाह के सामने चलना, खडे रहना, स्थिर रहना भी कठिन है, तो फिर उस दिशा में दौडने की तो बात ही कहाँ ?

गत अभ्यास में संवर के कुछ भेद जानने के पश्चात अब हम आगे के भेदों को जानने का प्रयास करेंगे । जानकर, समझकर, स्वीकारकर, आत्म कल्याण करें । कारण प्रभु महावीर स्वामी को गौतम स्वामी ने पूछा ''प्रभु ज्ञान का फल क्या ?''

प्रभु ने कहा '' ज्ञान का फल कर्म से अटकने रुप विरती ही है ।''

''जहाँ संवर का स्वीकार है, वहाँ आश्रव से विराम है ।'' जानकर संवर से जीवन सुधारें ।

खंति, मद्दव, अज्जव, मुत्ती
तव संजमे अ बोधव्वे ।
संच्चं सोअं अकिंचणं च
बंभच जइ धम्मो ।। २९।।

क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता (मुक्ति), तप, संयम, सत्य, पवित्रता आकिंचन्य और ब्रम्हचर्य ये यतिधर्म जानने चाहिये ।

आत्मा में करना, आत्मा के ज्ञायक भाव में स्थिर होना वही सच्ची वीतरागता है, वही सच्चाधर्म है । ये धर्म यहाँ यतिधर्म के नाम से दस प्रकार का कहा है ।

१.क्षमा - क्रोध कषाय का अभाव वह क्षमा । यह क्षमा पाँच प्रकार की है ।

१) उपकार क्षमा - अपना एक समय का उपकारी व्यक्ति अपने सामने कटु वचनादि का प्रयोग करे, अहितकर नुकसानकारी प्रवृति करे तो भी उसके पूर्व के उपकार को स्मरण में रखकर सहनशीलता के साथ क्षमा धारण करना वह उपकार क्षमा । २) अपकार क्षमा - बलवान व्यक्ति हमारा नुकसान करे फिर भी अगर क्रोध करुंगा तो मुझे ज्यादा हेरान करेगा, ज्यादा नुकसान करेगा यह सोच कर क्षमा धारणा करना वह अपकार क्षमा है । ३) विपाक क्षमा - क्रोध करने जैसा नहीं है । क्रोध करने से उसके कडवे फल भोगने पडते है, कर्म बंधते है ऐसा जानकर क्रोध के निमित्त में भी क्रोध न करके क्षमा धारण करना वह विपाक क्षमा है । ४) वचन क्षमा - परमात्मा ने शास्त्रो में साधु एवं श्रावक को क्षमा धारण करने को कहा है । आगम वचन मानना चाहिये ऐसा जानकर क्षमा धारण करना वह वचन क्षमा है । ५) धर्म क्षमा - क्षमा यह आत्मा का गुण है, आत्मा का स्वभाव है, आत्मा का धर्म है ऐसा जानकर क्रोध को त्यागकर क्षमा धारण करना वह धर्म क्षमा है ।

२. मार्दव - जाति मद, कुलमद वगैरह आठ प्रकार के मद का याने अहंकार का अभाव वह मार्दव है । मार्दव याने नम्रता, निराभिमानिता । जब मान कषाय शांत होता है, तभी मार्दव नम्रता का धर्म प्रगट होता है ।

३. आर्जव - माया कषाय में से मुक्ति अथवा माया कपट का अभाव वह आर्जव है । आर्जव सरलता और निष्कपटतामय है ।

४. मुक्ति - लोभ कषाय में से मुक्ति अथवा लोभ कषाय का अभाव याने निर्लोभता वह मुक्ति है ।

५.तप - इच्छाओं का निरोध, इच्छाओं को रोकना वह तप है । तप बारह प्रकार के हैं । इसका संवर और निर्जरा दोनों में समावेश होता है ।

६. संयम - हिंसा आदि अशुभ प्रवृति से आंशिक अथवा सर्वथा निवृति वो संयम है । साधु का संयम १७ प्रकार का है । पांच महाव्रत, पांच इंद्रिय निग्रह चार कषाय जय और मन,वचन, काया, अशुभ प्रवृति से निवृति ।

७. सत्य - सत्य, हित, मित, निर्दोष, निर्वद्य, मधुर वचन बोलना वो सत्य धर्म ।

८. शौच - शौच याने पवित्रता, यह पवित्रता मन,वचन, काया और आत्मा की है । अष्ट प्रवचन माता के पालन से सत्य महाव्रत पालन से, राग,द्वेष त्याग के लक्ष्य से तथा बाह्य, अभ्यंतर तप से साधु, साध्वीजी भगवंत शौच धर्म का पालन करते है ।

९. अकिंचन्य - किसी भी प्रकार का परिग्रह न रखना तथा परिग्रह के उपर ममता न रखना अकिंचन धर्म है ।

१०. ब्रम्हचर्य - मन, वचन, काया से नव वाड सहित संपूर्ण ब्रम्हचर्य व्रत का पालन वह ब्रम्हचर्य धर्म है ।

बारह भावना

पढम मणिच्च मसरणं, संसारो अेगया य अण्णतं ।
असुइतं आसव संवरो अ तह निज्जरा नवमी ।।३०।।

प्रथम अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव और संवर तथा नवमी निर्जरा भावना ।

संसार के सच्चे स्वरुप को समझाने वाली और आत्मकल्याण के मार्ग को दर्शाने वाली बारह भावनाओं का चिंतन आत्मा को कर्मो के आश्रव से बचाता है । इस कारण इनका समावेश संवर तत्व में होता है । इन बारह भावनाओ का संक्षिप्त स्वरुप निम्न प्रकार से है :-

१. अनित्य भावना - संसार में, इस विश्व में इन आंखो से जो दिखता है वह समृद्धि अनित्य है, नश्वर है, अशाश्वत और क्षणभुंगर है । सत्ता, संपति, समृद्धि, सौंदर्य, गाडी, लाडी, महल, रुप, यौवन, शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार सब कुछ नाशवंत है । इसका चिंतन, मनन इन सबके प्रति मोह को घटाने वाला बनता है । यही अनित्य भावना है ।

२. अशरण भावना - जन्म,जरा और मृत्युमय इस संसार में संकट के समय या मृत्यु के समय कोई भी शरण नहीं दे सकता । यमराज के पंजे में से न तो नोटो के बंडल छुडा सकते है, न ही स्नेही स्वजन छुडा सकते हैं , सभी वहाँ लाचार हैं । एक मात्र धर्म ही शरण देने में समर्थ है, उसका चिंतन जीव को समाधी मरण दिलाने में समर्थ बनता है । यह अशरण भावना है ।

३. संसार भावना - संसार स्वार्थमय, पापमय, दुःखमय है । संसार में जन्म दुखमय हैं । काया रोग से ग्रस्त होती है, संबंध स्वार्थ से भरे हुए हैं, पगपग पर संसार में पाप करना पडता है । ऐसे भयानक संसार के स्वरुप का चिंतन मनन करने से संसार के प्रति वैराग्यभाव जागता है । ये संसार भावना है ।

४. एकत्व भावना - जीव अकेला दुनिया में आता है, अकेला कर्म बांधता है, अकेला ही कर्म का फल भोगता है, अकेला ही दुनिया से विदा लेता है । इस दुनिया में आकर मेरा मेरा करके बहुत कुछ करता है, पर कुछ भी उसका होता नहीं है, कुछ भी उसके साथ जाता नहीं, सब कुछ यहाँ का यहीं पडा रहता है । इसका चिंतन एकत्व भावना है ।

५. अन्यत्व भावना - मैं आत्मा हूँ, आत्मा देह से अलग है, घर परिवार, फर्निचर सब कुछ आत्मा से पर है, अन्य हैं । बाह्य सामग्री आत्मा से पर है । कोई किसी का नहीं ऐसी विचारणा, ऐसा चिंतन वह अन्यत्व भावना है ।

६. अशुचि भावना - बाहर से सुंदर, स्वरुपवान दिखती काया अंदर से मल मूत्र से भरी हुई है । नगर की गटर की तरह अशुचि से भरी हुई है । हाड, मांस, रुधिर, मेद और रस से बनी यह काया चमडी से मडी हुई अच्छी दिखती है, परंतु अंदर से देखने पर भयानक और विभत्स लगे ऐसी काया की अशुचि का चिंतन वह अशुचि भावना है ।

७. आश्रव भावना - संसार अनादि काल से है, अनंतकाल तक चलने वाला है, इसका कारण आश्रव है । आश्रव द्वारा सतत शुभ, अशुभ कर्मो का आना चालु ही है, मिथ्यात्व अविरति, कषाय और प्रमाद ये कर्म बंध के कारण हैं । जिनसे कर्मो का प्रवाह आत्मा में सतत बहता रहता है, इससे ही संसार में जीव का भटकना भी चालू रहता है । इस तरह सुख-दुःख का कारण आश्रव है । उसका चिंतन, विचारणा वह आश्रव भावना है ।

८. संवर भावना - आश्रव से विपरीत संवर भावना है । अनादि से आ रहे कर्म के प्रवाह को अटकाने का कार्य संवर है । कर्म को अटकाने के हेतुरुप सम्यक्त्व, विरति, समिति गुप्ति की आराधना जीवन में आवश्यक है । यही संवर के स्वरुप का चिंतन उसकी विचारणा वही संवर भावना है ।

९. निर्जरा भावना - कर्म का आना आश्रव है, कर्म को आने से अटकाना वह संवर है, तो अनादि से आत्मा के साथ जुडे कर्मो को अलग करना वह छः प्रकार के बाह्य और छः प्रकार के अभ्यंतर तप से कर्म की अंशतः, अंशतः-निर्जरा होती है । उसका चिंतन करना वह निर्जरा भावना है ।

लोग सहावो बोहि, दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा ।
अेआओ भावणाओ, भावेअव्वा पयत्तेणं ।।३१।।

लोकस्वभाव, बोधि और धर्म के साधक अरिहंतादि भी दुर्लभ है । ये भावनायें प्रयत्न पूर्वक भाना ।

१०. लोक स्वरुप भावना - यह लोक १४ राजलोक ऊंचा है, दो पैर चौडे करके कमर पर हाथ रख कर खडे मनुष्य जैसा है । इसमें अधोलोक, तिर्च्छालोक और उर्ध्वलोक, तीन लोक है । अधोलोक में ७ नारकी हैं, तिर्च्छालोक में मनुष्य और तिर्यंच है, उर्ध्वलोक में देवलोक है । इस चौदह राजलोक में धर्मास्तिकाय वगैरह द्रव्य है । उनका चिंतन करना तथा सभी जीवो ने सभी स्थानो में अनंत जन्म मरण किये है । उसकी विचारणा करना वह लोकस्वरुप भावना है ।

११. बोधि दुर्लभ भावना - अनादि काल से इस संसार में परिभ्रमण करते इस जीव को दुर्लभ ऐसा आर्यक्षेत्र, मनुष्यभव और जिन-शासन परंतु इनमें अति दुर्लभ सम्यग् दर्शन प्राप्त न हुआ । जो सम्यग् दर्शन प्राप्त हो तो ही भवभ्रमण टले और मोक्ष मिले, सम्यगदर्शन अति दुर्लभ है । यह मिले तो मानवभव सफल है, अतिदुर्लभ बोधि की विचारणा चिंतन करना वह बोधि-दुर्लभ भावना है ।

१२. धर्म भावना - इस विश्व के जीवों को दुःख से और संसार से मुक्त कराने की ताकत एक मात्र जिन-प्रणीत धर्म में है । इस धर्म के उपदेशक अरिहंत परमात्मा का योग मिलना बहुत ही कठीन है । जितने भी जीव मुक्ति को पाये इस धर्म से ही पाये, जितने मुक्ति पाते हैं और जितने भविष्य में मुक्ति पायेंगे यह सब जिन-प्रणीत धर्म का ही प्रभाव है । ऐसे अति

मुल्यवान धर्म का चिंतन करना सही धर्म भावना है ।

चरित्र

सामाइ अत्थ पढमं, छेओवट्ठावणं भवे बीअं ।
परिहार विसुद्धि अं, सुहुमं तह संपरायं च ।।३२।।

पहला सामायिक, दूसरा छेदोपस्थानिक चारित्र, परिहार विशुद्धि तथा सूक्ष्म संपराय चारित्र है ।

चारित्र दो शब्दो की संधि से बना शब्द है, चय+ रिक्त / चय याने आठ कर्मो का संचय और रिक्त याने खाली करना । इससे चारित्र याने सर्व सावध व्यापार का त्याग करके निर्दोष निष्पाप जीवन का स्वामी बनना जिससे अनादि से संचय किये गये कर्मो का संचय खाली होता है ।

ऐसे चारित्र के अवस्था भेद से ५ (पाँच) प्रकार बताये हैं -

१. सामायिक चारित्र - सम याने समता, आय याने आवक, समता की जिसमें आवक हो, समता का जिसमें लाभ हो वह सामायिक चारित्र । वर्तमान काल में जो दीक्षाएं होती है, उसमें लघु दीक्षा दी जाती है, तब सामायिक चारित्र का उच्चारण कराने में आता है । शुद्धि पूर्वक पवित्र पंचाचार का पालन करना सामायिक चारित्र है ।

२. छेदोपस्थापनीय चारित्र - छेद और उपस्थापन दोनों शब्द इस चारित्र के रहस्य को खुला करते हैं । पूर्व के चारित्र का छेद कर पाँच महाव्रतो की स्थापना करना या उच्चराना वह छेदोपस्थापनीय चारित्र है । यह चारित्र वर्तमान में बडी दीक्षा के समय उच्चराया जाता है । महाव्रतघात के समय प्रायश्चित रुप से तथा तीर्थ- संक्राति रुप उच्चराया जाता है ।

३. परिहार विशुद्धि चारित्र - परिहार याने त्याग । जिस चारित्र में परिहार तप विशेष से चारित्र तथा कर्म निर्जरा रुप विशेष शुद्धि होती है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं । नौ साधु गच्छ से बाहर निकलकर १८ महिने के लिये परिहार कल्प का स्वीकार करें । ४ साधु ६ महिने तप करे, ४ साधु वैयावच्च करें, एक साधु वाचनाचार्य बने, फिर ६ महिने वैयावच्च करने वाले तप करे, तप करने वाले वैयावच्च करें, एक वाचनाचार्य बने । फिर वाचनाचार्य तप करे, १ से ७ साधु वैयावच्च करे, एक वाचनाचार्य बने । इस तरह १८ महिने में परिहार कल्प पूर्ण होता है ।

४. सूक्ष्म संपराय चारित्र - दसवें गुणस्थानक में मोहनीय कर्म की २८ प्रकृति में से एक सूक्ष्म संज्वलन लोभ को छोडकर सभी प्रकृति क्षय अथवा उपशम हो जाती है । सिर्फ सूक्ष्म संज्वलन लोभ का उदय रहता है, तब दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में प्रवर्तित जीव का सूक्ष्म संपराय चारित्र कहलाता है ।

५. यथाख्यात चारित्र -

तत्तो अ अहख्खायं, खायं सव्वंमि जीव लोगम्मि ।
जं चरिऊण सुविहिआ, वच्चंति अयरामणं ठाणं ।।३३।।

तथा उनके बाद अन्तिम यथाख्यात अर्थात सर्व जीवलोक में प्रसिद्ध चारित्र है । इस चारित्र का अनुपालन करके सुविहित जीव मोक्ष प्राप्त करतें है ।

यथा - जैसा (अरिहंतो ने) ख्यात - कहा है, वैसा संपूर्ण चारित्र यथाख्यात चारित्र है ।

कषायों के संपूर्ण क्षय अथवा उपशम होने से वह अति विशुध्द चारित्र की प्राप्ति अकषायी साधुओं को होती है । यह चारित्र ११,१२,१३ और १४ वें गुणस्थानक में रहे वीतराग को ही होता है ।

यह चारित्र जीव को निश्चित मोक्षनगरी में पहुंचाकर अजरामर स्थान दिलाता है ।

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

(शासनपति प्रभु महावीर)

ग्रीष्म ऋतु, आषाढ मास, सुदी छठ की पावनकारी रात्री, सब विमानो में अत्यंत श्रेष्ठ, श्वेत कमल समान, महाविजयवंत वीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थितिवाले ऐसे दसवे प्राणत नामक देवलोक के ''पुष्पोत्तर'' नामके विमानसे देव आयुष्य पूर्ण होने से, देवगति नामकर्म का क्षय होने से और वैक्रियिक शरीर में रहनेका समय पूर्ण होने से भगवान महावीर का जीव देवसंबंधी शरीर का त्याग कर, इस जंबूद्विप में, दक्षिणार्थ भरत में, ब्राम्हणकुंड, नामके नगर में ऋषभदत्त नामके ब्राम्हण की देवानंदा नाम की ब्राम्हणी पत्नीके कुक्षी में मध्यरात्री में गर्भपने उत्पन्न हुए ।

प्रभु जिस रात को देवानंदा की कुक्षि में आये उस रात में शय्या में, नहीं अति निद्रा लेने वाली, नहीं जागृत ऐसी अल्पनिद्रा वाली देवानंदा, प्रशंसा योग्य, समृद्धिवान करनेवाले, कल्याणकारी, उपद्रवों को शांत करनेवाले चौदह स्वप्न देखे । १) हाथी २) बैल ३) सिंह ४) लक्ष्मीदेवी) पुष्पमाला ६) चंद्र ७) सूर्य ८) ध्वजा ९) कलश १०) पद्मसरोवर ११) क्षीरसमुद्र १२) देवविमान १३) रत्नकी राशी १४) निर्धूम अग्नि ।

चौदह महास्वप्न देखकर देवानंदा ब्राम्हणी अत्यंत हर्षित हुई । संतुष्ट हुई, मन आनंदयुक्त और प्रीतियुक्त हुआ । स्वप्नों को याद करती हुई, देवानंदा राजहंस जैसी गति से चलती हुई जहाँ ऋषभदत्त ब्राम्हण थे वहाँ आयी । ''जय'' और विजय शब्दो से बधाई देती है । दोनों हाथके दस नख जुडे इस तरह अंजली जोडकर मस्तक पर घुमाकर सिर झुकाके देवानंदा ब्राम्हणी इस तरह कहने लगी ''हे देवानुप्रिय स्वामी''। मैं आज अर्धनिद्रिस्त अवस्था में शय्या में थी तब, उदार हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मीदेवी आदि चौदह महास्वप्नों को देखकर जागृत हो गई हूँ । हे देवानुप्रिय ! वे कल्याण कारी चौदह महास्वप्न क्या कल्याणकारी फल देंगे और क्या वृत्तिविशेष होगा यह बताओ ।

ऋषभदत्त, देवानंदा से चौदह महास्वप्नों की बात जानकर, हृदय में धारण कर अत्यंत हर्षित हुए । आह्लादित हुए । अपने स्वाभाविक मति और बुद्धि विज्ञान से उन स्वप्नो का अर्थविचार कर कहने लगे '' हे देवानुप्रिये ! आपने मनोहर स्वप्न देखे है, कल्याण करनेवाले, आरोग्य देनेवाले, संतोष एवं दीर्घायु देनेवाले, उपद्रवोंका नाश करनेवाले एवं इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति करा देनेवाले स्वप्न आपने देखे है । अतः हे देवानुप्रिये ! इन स्वप्नदर्शन से धनलाभ, पुत्रलाभ एवं सुख का लाभ आपको होगा । हे देवानुप्रिये ! आप नौ मास और साढे सात अहोरात्री पूर्ण होने पर पुत्ररत्न को जन्म दोगी ।''

''यह आपका पुत्र आठ वर्षका होगा तब उसे भूतकाल एवं भविष्यकाल का ज्ञान होगा, अनुक्रमसे युवावस्था को प्राप्त होगा तब ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद यह चार वेद और पांचवा इतिहास पुराण एवं छठवे निघंटु शब्दकोष के अंगोपांग के रहस्य सहित पारगामी होगा, सांख्य, गणित, आचार शास्त्रोंमें निपुण होगे । व्याकरण,काव्य, न्याय, छंद, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र और अन्य अनेक बाम्हण संबंधी, परिव्राजक संबंधी शास्त्रो में अति निपुण होगा ।''

अतः हे देवानुप्रिये देवानंदा ! आपने उत्तम कल्याणकारी, आरोग्यकारी, दीर्घ आयुष्यकारी, मंगलकारी ऐसे महान स्वप्न देखे है '' ऐसा कहकर ऋषभदत्त ब्राम्हण वारंवार उसकी प्रशंसा करता है, अनुमोदन करता है।''

देवानंदा स्वामी द्वारा स्वप्नों का अर्थ सुनकर हर्षित हुई । प्रसन्न हुई । स्वप्नोंके अर्थ को स्वीकार कर ऋषभदत्त ब्राम्हण के साथ मनुष्य संबंधी उत्तम भोगों को भोगती है ।

****

सौधर्म देवलोक में.....
सौधर्मा वतंसक विमान में.....
सुधर्मा नामक सभा में .....
शक्र नामक सिंहासन पर बिराजमान है सौधर्मेन्द्र।

उत्तम प्रकार के वाजिन्त्रो के शब्दों द्वारा दिव्य ऐसे देवलोक के भोगने योग्य, अनुभवने योग, विषयों को अनुभवने वाले इन्द्र लाख योजन के जंबुद्वीप को देख रहे हैं।

जंबुद्वीप के दक्षिणार्थ भरत क्षेत्र के ब्राम्हणकुंड ग्राम नगर में देवानंदा ब्राम्हणीकी कुक्षी में, चरमतीर्थपति भगवान श्री महावीर को गर्भपने उत्पन्न हुए देखते है । प्रभुको देखकर हर्षित हुए । संतुष्ट हुए । चित्त में आनंदित हुए । मनमें प्रसन्न हुए । प्रभु को गर्भ में आये हुए देख प्रभुदर्शन करते हुए तत्क्षण इन्द्र आदरपूर्वक शीघ्र गतिसे एकदम सिंहासन से उठते है, उठकर पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरते हैं । विविध रत्नों से शोभायमान पादुका उतारकर एक साडी, उत्तरासंग कर अंजलीपूर्वक दो हाथ जोडकर श्री तीर्थंकर सन्मुख सात आठ कदम जाते है । जाकर बाँया घूटना उंचा करते है, जमीन को स्पर्श किये बिना खडा रखते है, दाँये घूटने को जमिन पर रखकर अपना सर तीन बार जमीनपर स्पर्श कर मस्तक उठाता है । दोनो हाथोंकी दस उंगलियों को मिलाकर अंजली बनाकर मस्तक पर घुमाकर इन्द्र अरिहंत परमात्माओं को नमस्कार करने के लिये ''नमोत्थुणं'' (शक्रस्तव) कहता है ।

भगवान महावीर को नमस्कार कर इन्द्र पूर्व सन्मुख सिंहासन पर बैठे तब मनमें चिंतनस्वरुप विचार आया कि, अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, क्षुद्रकुलो में, अधमकुलों में, अल्पकुल वाले के कुटुंब कुलों में, निर्धन कुलों में, लोभी कुलों में, भिक्षुक कुलों में, ब्राम्हण कुलों में कभी भी जन्म नहीं लेते । अपितु निश्चय से उग्र कुलों में, भोग कुलों में, राजकुलों में इक्ष्वाकु कुलों में, क्षत्रिय कुलों में, हरिवंश कुलों में जन्म लेते है ।

तो फिर प्रभुजी ब्राम्हण कुल में क्यों आये ?

अनंत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी के बाद ऐसी आश्चर्यकारक घटनाऐं घटती है । बाकी रहे हुए नीचगोत्र आदि कर्म के उदय से उत्तम पुरुष हीन कुलों में गर्भपने आते है, परंतु जन्म नहीं लेते । जब उत्तम पुरुष नीच कुल में आते है तब मेरा आचार है कि उन्हें नीच कुल में से उच्च कुल में रख दूँ । अतः मुझे भी यह पुण्य कार्य करना पडेगा । ऐसा सोचकर पायदल सैन्य के अधिपति हरिणगमेषि देव को बुलाकर कहा '' हे देवानुप्रिय ! हरिणगमेषिन् ! तु श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभुको इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र के ब्राम्हणकुंड ग्राम नगर में जाकर ऋषभदत्त ब्राम्हण की पत्नी देवानंदा की कुक्षि से लेकर क्षत्रियकुंडग्राम नगर में जाकर वहाँ सिध्दार्थ राजा की पत्नी त्रिशलाराणी के गर्भपने स्थापित कर और त्रिशला रानी के पुत्रीरुप गर्भ को देवानंदा ब्राम्हणी के गर्भ में रख । इन्द्रो का इस तरह बरतने का आचार है । अतः तुझे ऐसा करने को कहा है । तुं शीघ्र ही यह कार्य कर और कार्य पूर्ण करने के समाचार मुझे दे । ''

इन्द्र का ऐसा आदेश सुनकर अत्यंत हर्षित ऐसे सेनापति हरिणगमैषि देवने इन्द्र की उस आज्ञा को अंजली जोडकर मस्तक पर घुमाकर विनय से स्वीकारा और ईशान कोने में आये । वहाँ वैक्रिय समुद्घात स्वयं का उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है, पवित्र पुद्गल के उस शरीर से हरिणगमैषि देव अपनी उत्कृष्ट वेगवाली, चपल, अत्यंत तीव्र जयकारी, प्रचंड शीघ्र, विघ्ननाशिनी ऐसी दिव्य देवगतिसे नीचे उतरते उतरते तिर्च्छे असंख्य द्वीपसमुद्रों के मध्य मध्य भागों से आते हुए जहाँ जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में ब्राम्हणकुंड ग्राम नगरमें ऋषभदत्त ब्राम्हण के घर में उसकी पत्नी देवानंदा ब्राम्हणी है वहाँ आकर परिवार सहित देवानंदा को अवस्वापिनी निद्रा देकर प्रभु को नमस्कार कर, अपवित्र पुद्गलों को दूर कर, पवित्र पुद्गलों को फैलाता है । फिर ''भगवान मुझे आज्ञा दो'' ऐसा कहकर पीडारहित श्रीवीर प्रभु को पीडा न हो इस तरह दिव्य प्रभाव से हाथ में लेकर क्षत्रियकुंड नगर में सिद्धार्थ राजा के घर त्रिशला क्षत्रियाणी के पास आकर परिवार सहित त्रिशलारानी को अवस्वापिनी निद्रा देकर, अशुभ पुद्गलों को दूर कर शुभ पुद्गल फैलाकर सुगंधमय बनाकर प्रभु को पीडारहित पने दिव्य प्रभाव से त्रिशला के उदर में गर्भपने स्थापित करता है । और त्रिशला के गर्भ को लेकर देवानंदा के गर्भ में स्थापित करता है । फिर वह देव जिस दिशा से आया था उस दिशा में जाते हुए सौधर्म देवलोक में सौधर्मवतंसक विमान में शक्रसिंहासन पर विराजित देवेंद्र देवराजा बैठ थे वहाँ आकर इंद्रको ''आपकी आज्ञानुसार मैं कार्य पूर्ण कर आया हूँ'' ऐसा निवेदन करता है ।

जिस रात को प्रभु देवानंदा की कुक्षि से त्रिशला की कुक्षिमें संहरित हुए उस रात्रि को अल्पनिद्रावाली देवानंदा ने मनोहर, धन्य, कल्याणकारी, मांगलिक ऐसे चौदह महास्वप्नों को त्रिशला क्षत्रियाणी ने हरण किया ऐसा स्वप्न देखा । उस रात्री में त्रिशलारानी ने चौदह महास्वप्न देखे ।

श्री ऋषभदेव की माता ने प्रथम वृषभ देखा था । महावीर प्रभु की माता ने प्रथम सिंह को देखा । अन्य सब तीर्थंकरों की माता ने प्रथम स्वप्न में हाथी देखा है ।

त्रिशला रानी ने खुद ने देखे हुए स्वप्न की बात

सिध्दार्थ राजा को अवगत करायी । और इसका मुझे क्या फल मिलेगा ऐसी पृच्छा की ।

सिद्धार्थ राजा ने कहा ''हे देवानुप्रिये ! आपने कल्याणकारी उदार सपने देखे है, वे उपद्रव का हरण करनेवाले, धन की प्राप्ति करानेवाले, शोभावाले, आरोग्य, चिदानंद, दिर्घायु एवं कल्याणमंगल और इच्छित वस्तुकी प्राप्ति करानेवाले सपने देखे है । हे देवानुप्रिये ! नौ मास और साढेसात रात्रि दिवस व्यतीत होनेपर श्रेष्ठ पुत्र को आप जन्म दोगी ।''

दुसरे दिन स्वप्न पाठकों को बुलाकर उनका सन्मान, सत्कार कर उन्हे सपनों का फल पूछा । स्वप्न पाठकों ने कहा ''हे देवानुप्रिय, सिद्धार्थ राजन् ! हमारे स्वप्न शास्त्र में बयालीस सपने मध्यम और तीस सपने उत्तम कहे गये है । इस तरह बहत्तर सपने कहे है । हे देवानुप्रिय ! उन तीस महासपनों में से अरिहंत गर्भ में आते है, तब अरिहंत की माताएं और चक्रवर्ती गर्भ में आते है तब चक्रवर्ती की माताएं हाथी, वृषभ, आदि चौदह महासपनो को देखकर जागती है । वासुदेव गर्भ में आये तब वासुदेव की माताएं उन चौदह सपनोंमें से सात सपने देखकर जागती है । बलदेव की माताएं चौदह में से चार महासपनों को देखकर जागती है । मांडलिक राजा की माता एक एक महास्वप्न देखती है ।

तीर्थंकरकी माता जिन चौदह महास्वप्नों को देखकर जागती है वही चौदह स्वप्न त्रिशलारानी ने देखे ।

प्रथम स्वप्न में चार दंतुशूल वाला हाथी देखा । उससे महारानी को महापराक्रमी एंव दान, शील, तप, भाव, रुप चार प्रकार का धर्म प्रवर्तित करनेवाला पुत्ररत्न होगा ।

दूसरे स्वप्न में ऋषभ देखा है, उससे धर्म का वहन करने वाला पुत्र होगा । वह जैसे किसान खेत में बैलों द्वारा धान्य के बीज बोता है, वैसे ही इस भरतक्षेत्र में बोधिबीज का वपन करेगा ।

तीसरे सपने में सिंह देखा । कामदेव आदि दुष्ट हाथीयों को भगा देगा ।

चौथे सपने में लक्ष्मीदेवी को देखा । उससे वरसीदान देकर, दीक्षा लेकर केवलज्ञान रुपी लक्ष्मी को पाकर तीर्थंकर बनकर आठ प्रातिहार्यादि महालक्ष्मी को भोगेंगे ।

पाँचवे स्वप्न में पुष्पों की दो मालाएं देखी है अतः साधु धर्म और श्रावक धर्म ये दो प्रकार के धर्म बताएंगे और तीनों भुवनों में पूजे जायेंगे ।

छठ्ठे स्वप्न में चंद्रमा देखा है अतः मनोहर दर्शन वाला शान्त प्रकृति वाला होगा और तीनों लोक के जीवों को हर्ष देने वाला होगा ।

सातवे स्वप्न में सूर्य देखा है, अतः जीवों के मिथ्यास्वरुप अंधःकार को नाश करने वाला और भामंडल से विभूषित होगा ।

आठवे स्वप्न में ध्वज देखा । अतः कुल में ध्वज समान श्रेष्ठ होगा, उसके आगे धर्मध्वज चलेगा ।

नौवे स्वप्न में पूर्णकलश को देखा, अतः संपूर्ण गुण वाला होगा । और धर्मरुप महल को स्थिर करेगा ।

दसवे स्वप्न में पद्म सरोवर देखा, अतः विश्व के ताप को नष्ट करने वाला होगा । एवं देवों द्वारा रचित सुवर्णकमल पर पैर रखकर चलने वाला होगा ।

ग्यारहवे स्वप्न में समुद्र देखा अतः गंभीर होगा और केवलज्ञान पाकर चौदह राज लोक मे रहे हुए पदार्थ के भावों को जानेगा ।

बारहवे स्वप्न में देवविमान देखा अतः भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और देवलोक तक के वैमानिक देवों के पूजने योग्य और उनके द्वारा सेवा लेने योग्य होगा । उसी तरह नवग्रेवेयक और पाँच अनुत्तरवासी देवों के आराध्य होगे ।

तेरहवे स्वप्न में रत्नराशी देखी है । अतः देवों द्वारा रचित तीन गढवाले समवशरण में विराजित होंगे, और भवि जीवों को धर्म का उपदेश देंगे ।

चौदहवे स्वप्न में निर्धूम अग्नि देखा है अतः तेजस्वी और खुद के आत्मा की शुद्धि करने वाला होगा साथ साथ भवि जीवों को शुद्ध करने वाला होगा । चौदह महास्वप्नोंका एकत्रित फल यह होगा की चौदह राजलोक का स्वामी होगा । चौदह राजलोक के अग्रस्थान में रहे हुए मोक्षस्थान को प्राप्त करेगा ।

हे देवानुप्रिय राजन् ! इस प्रकारके फल को देनेवाले ऐसे चौदह महास्वप्नो को त्रिशला महारानी ने देखा है । अतः आपको धन का लाभ होगा, सुख का लाभ होगा, भोगों का लाभ होगा, पुत्र लाभ होगा, राज्यलाभ होगा ।

जिस रात को श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु ज्ञातकुल में संहरीत हुए, उस रात से ज्ञातकुल ने रौप्य और

सुवर्ण से वृद्धि पायी । अतः श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु के मातापिता के मन में इस प्रकार चिंतन अभिलाष रुप मन में रहा हुआ, भाव उत्पन्न हुआ की ''जब से यह पुत्र गर्भ में आया है, तब से हम रौप्य से वृद्धि पाये है, सुवर्ण से वृद्धि पाये है, उसी तरह धन,धान्य के भंडार से नगर से, रत्न, मणि, मुक्ताफल, शंख, स्फटिक, प्रवाल आदि से वृद्धि हुई है । उसी तरह स्वजनों के प्रीति सत्कार से, विद्यमान श्रेष्ठ द्रव्यों से अतिशय वृद्धि पाये है । अतः हमारा यह बालक जन्म लेगा तब उस बालक का वृद्धि पाने योग्य गुणवाला ''वर्धमान'' नाम रखेंगे ।

श्रमण भगवान श्री महावीरदेव माता के लिये अपनी भक्ति बताने के लिए और मातृभक्ति का प्रेरक दृष्टान्त बताने के लिये '' मैं जब गर्भ में हिलता, चलता हूँ तब माता को जरुर कष्ट होता होगा ।'' इस प्रकार विचार कर प्रभु गर्भ में निश्चल रहे । हलन,चलन, कंपन का त्याग कर अंगोपांग को गुप्त रखकर रहे । प्रभु गर्भ में निश्चल हो जाने से त्रिशलारानी को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि क्या मेरा गर्भ देवादि के द्वारा हरण तो नहीं हुआ ? अथवा क्या मेरा गर्भ मृत हो गया ? क्या गर्भ का च्यवन हो गया ? क्या गर्भ गल गया ? क्यों कि वह गर्भ पहले मेरे उदर में फिरता था अब यह गर्भ हलन,चलन नहीं करता है । ऐसे विचारों से निराश मनोरथवाली एवं गर्भहरण के चिंता से शोक समुद्र में डुबी हुई, हथेली में मुँह रखकर बैठने वाली तथा आर्तध्यानग्रस्त बनी हुई वह त्रिशलारानी नीची दृष्टी रखकर पृथ्वी सन्मुख देखती हुई ऐसा विचार करती है की अरे ! मैं भाग्यहीना हुँ । भाग्यहीन ऐसे हमारे यहाँ ऐसे निधान कैसे प्रकट होगे ? दरिद्र के हाथ में चिंतामणी रत्न कहाँ से रहेगा ? अरे ! दैव तुझे धिःकार है । तुने मेरा मनोरथरुप कल्पवृक्ष उखाड दिया है । तुने मुझे मेरुपर्वत पर चढाकर नीचे फेंक दिया है । तुने मुझे रत्नों का खजाना देकर लूट लिया है । भोजन का थाल देकर खींच लिया है, मेरी नौका भर समुद्र में डुबा दी है । हे दैव तुने मेरे त्रिलोक नाथ पुत्ररत्न को हरण किया है अतः तू अत्यंत निर्दयी है । अत्यंत निर्लज्ज है । इस तरह नसीब को कोसते हुए पुनः विचार करती है, ''दैव को कोस ने से क्या फायदा ?

अरे जीव ! तूने पूर्वभवों में तीव्र पाप किये होगे, दूध पीते हुए बच्चों को और बछडों को माता से वियोग कराया होगा, वृक्ष की डालियाँ तोडी होगी, चूहों के बिल पानी से भर दिये होंगे, चिंटीयों के घर में गरम पानी भर दिया होगा, पंछियों के अंडे फोडे होगे, अथवा बच्चों के साथ पक्षियों के घर जमीन पर फेंक दिये होंगे, पक्षियों का बच्चों से वियोग कराया होगा, या तो पूर्व में कभी बालहत्या की होगी, गर्भ गिराये होगे, शोक्य के पुत्रादि के लिये मंत्र औषधों का प्रयोग किया होगा, कामण किया होगा (दुष्ट जादु) गर्भ का स्तंभन किया होगा, तालाब फोडे होंगे, बिना छाना पानी पिया होंगा, पक्षियों को पिंजरे में डाला होगा, शिकार किया होगा, प्राणियों की हिंसा की होगी, असत्य बोलकर अन्योंको ठगा होगा, दुसरों के रत्न, सुवर्ण धन आदि लूटा होगा, शीलव्रत भंग किया होगा, किसी पर झूठे आरोप लगाये होगे, किसी का शीलभंग कराया होगा, शाप दिया होगा, मुनियों को संताप दिया होगा, गांवोको जलाया होगा, जंगल में दावाग्नि लगाई होगी, देवद्रव्य भक्षण किया होगा, जिन मंदीर गिराया होगा, गुरु का अवर्णवाद बोला होगा । देवगुरुधर्म पर द्वेष किया होगा, किसी को दान देते हुए अटकाया होगा, ऐसे अनेक पाप मेरे जीव ने पूर्व भव में किये होंगे, वे सब मुझे इस भव में उदय में आये है । इसी कारण मेरा गर्भरत्न गल गया है । मेरे दुःखों का कोई पार नहीं है । हे सखीओ ! मैं समझती थी कि मैने चौदह सपने देखे है इसलिये चौदहराज लोक पूजित ऐसे पुत्ररत्न को पाऊंगी । पर मेरे मनोरथ मेरे मन में ही रह गये । दैव ने एक भी मनोरथ पूर्ण नहीं होने दिया । अरे अब मैं क्या करुं, कहाँ जाऊं, किसके पास यह फरियाद करुं ? इस संसार के असारपने को धिक्कार हो ।''

इस वक्त श्रमण भगवान श्री महावीर प्रभु ने अपनी माता के मन में उत्पन्न हुए इस प्रकार के विचार, मनोगत भाव अवधिज्ञान द्वारा जानकर सोचा कि, ''अहो ! इस मोहराजा की गति विचित्र है । मैने माता के सुख के लिये हलनचलन बंद किया परंतु मेरा यह कर्तव्य माता के सुख

के बदले दुःखरुप बन गया । अब माता के इस दुःख को दूर करने के लिये हलनचलन करना होगा ऐसा सोचकर प्रभुने अपना एक अंग हिलाया, गर्भ के स्पंदन , हलचल से त्रिशलारानी बाग-बाग हो गयी । अत्यंत आनंदित होकर कहने लगी ''मेरे गर्भ का किसी ने हरण नहीं किया है, मेरा गर्भ मरा नहीं है, च्यवन भी नहीं हुआ है, गल भी नहीं गया है, यह मेरा गर्भ की अभी कुछ समय के लिये हलचल बंद हो गयी थी । वह अब पुनः स्पंदित हो उठा है'' इस तरह कहकर अत्यंत हर्षपूर्ण हृदय से कहने लगी ''मेरा गर्भ बिलकुल कुशल है । अभी और मेरा भाग्य जागृत है । मैं तीन लोक के माननीय पुत्र को पाकर तीनो लोक में माननीय बन जाउंगी । मेरा जीवन धन्य और सार्थक बन जायेगा ।

अवधिज्ञान होने से अपना दीक्षा काल जाननेवाले प्रभु ने ऐसा अभिग्रह लेकर ऐसा सिद्धान्त नहीं स्थापा है कि जबतक मातापिता जीवित हो तबतक किसी ने दीक्षा नहीं लेनी चाहिये । क्योंकि प्रभु ने केलवज्ञान पाने के बाद मा-बाप जीवित हो उसने दीक्षा नहीं लेनी चाहिये ऐसा कभी भी कहा नहीं है । परंतु जिनके मातापिता जीवित थे ऐसी बहुत आत्माओं को दीक्षा दी है । पुनश्च ऐसा शास्त्रीय नियम होगा, तो श्री महावीरदेव के सिवाय बहुत सारे तीर्थंकरों ने माता-पिता जीवित होने पर भी दीक्षा क्यों ली ? इस चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव प्रभु ने दीक्षा ली अतः माता मरुदेवा ने लगभग हजार साल तक रो रोकर आंखों का तेज गँवाया । नेमिनाथ प्रभु को माँ ने विवाह के लिये बहुत समझाया फिर भी उनके जीवित होते हुए दीक्षा ले ली । ऐसा सब सोचकर माता-पिता जीवित होते है तब तक दीक्षा नहीं लेनी चाहिये ऐसा बोलना या मानना नहीं ।

पश्चात् त्रिशलारानी स्नान और पूजा कर कौतुकमांगल्य कर सब प्रकारके अलंकारोंसे सुशोभित होकर रहने लगी । अपने गर्भ को नहीं अति ठंडा, नहीं अति गरम, नहीं अति तीखा, मिरची, कालीमिर्च, सुंठ आदि से तीखा न हो ऐसे, नही अति कडवा, न अति कसैले, न अति खट्टे, न अति मधुर, न अति चिकने, न अति रुक्ष, न अति गीले, न अति सुखे परंतु सब ऋतुओं में सेवन करने से सुखकारी ऐसे प्रकार के भोजन से, वस्त्रोंसे, सुंगधी पदार्थों से, मालाओं से गर्भ का पोषण करती है । रोग, शोक, मोह और परिश्रम से रहित ऐसी रानी त्रिशला गर्भ को हितकारी, प्रमाणयुक्त आरोग्यकारक, पुष्टिकारक ऐसे आहार को भी योग्य अवसर पर वापरती थी । दोषरहित ऐसे कोमल शय्या एवं आसन का उपयोग करती थी । वैसे हि अत्यंत सुखदायी और मनोनुकुल ऐसी भूमि में रहते हुए, गर्भ का पोषण करती है । अब चैत्र सुदी तेरस के दिन त्रिशला रानी के उस उत्तम गर्भ को नौ महिने और साढेसात दिन पूर्ण हुए ।

अब जब चंद्र, सूर्यादि सब ग्रह उच्चस्थान में विद्यमान थे, सर्वत्र सौम्यभाव, शांति और प्रकाश विकसित हो रहा था, अंधःकार नष्ट हो गया था, उल्कापात, रजोवृष्टि, धरतीकंप और दिग्दाह जैसे उपद्रवोंका अत्यंत अभाव हो गया था । दिशाओं के अंत भाग तक विशुद्धि और निर्मलता छा गई थी । सब पक्षी अपनी मीठी मधुर वाणी से मानो जयजय शब्द का उच्चार कर रहे थे । दक्षिण दिशाका सुगंधी और शीतल पवन मंद मंद रीत से भूमि को स्पर्श कर रहा था एवं सर्व प्रकार के धान्यादि फसल से पृथ्वी भरी हुई थी । सुकाल आरोग्यादि अनुकुल संयोगों से देशवासी लोगों के हृदय हर्ष से नाच रहे थे । वसंतोत्सवादि क्रीडा देशभर में चल रही थी । ऐसे समय में मध्यरात्रि में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में चंद्र का योग प्राप्त होने पर त्रिशलारानी ने पुत्र को जन्म दिया ।

महावीर प्रभु का जन्म हुआ । **जय महावीर ।**